जीवन वृतांत

हिन्दुस्तान में नक्शबंदिया सिलसिले के बुजुर्ग व उनकी समाधियां

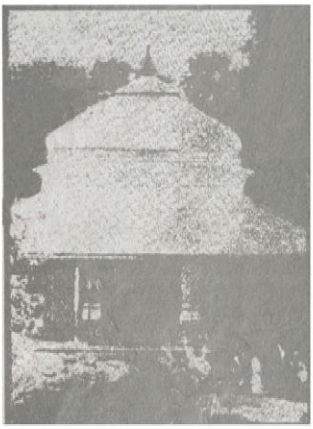

डा० हरनारायण सक्सैना

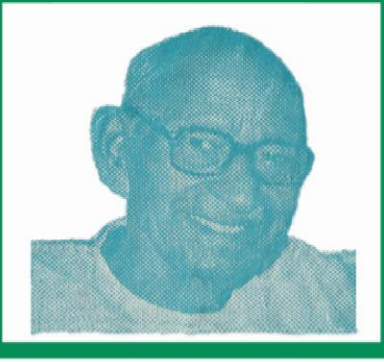

जीवन - वृतांत

हिन्दुस्तान में नक्शबंदिया सिलसिले
के बुजुर्ग व उनकी समाधियाँ

डॉ० हरनारायण सक्सेना
https://harnarayan-saxena.com/books%2C-video-and-audio

Digital Edition 3: 13 Oct 2018 (18j13)

विषय-सूची

1. प्राक्कथन 9
2. हिन्दुस्तान में नक्शबंदिया सिलसिले के बुजुर्ग व उनकी समाधियाँ 12
3. 24 - हजरत जनाब बाकी बिल्ला साहब (दिल्ली) 15
4. 25 - हजरत जनाब गौसुल आजम शेख अहमद साहब फारुखी 18
5. 26 - हजरत जनाब मासूम रज़ा साहब (सरहिंद-पंजाब) 21
6. 27 - हजरत जनाब सैफुद्दीन साहब (सरहिंद-पंजाब) 23
7. 28 - हजरत जनाब नूर मुहम्मद साहब (दिल्ली) 25
8. 29 - हजरत जनाब मिर्जा जानजाना साहब (दिल्ली) 27
9. 30 - हजरत जनाब नईमुल्ला साहब (बहराइच) 29
10. 31 - हजरत जनाब मुरादुल्ला साहब (लखनऊ) 31
11. 32 - हजरत जनाब क़ुतुब आलम अबुल हसन साहब नसीराबादी 33
12. 33 - हजरत जनाब मौलवी खलीफा अहमद अली ख़ाँ साहब (कायमगंज) .. 36
13. 34 - हजरत जनाब मौलवी फ़ज़्ल अहमद खां साहब (रायपुर-कायमगंज) ... 40
14. 34A - हजरत जनाब मौलवी अब्दुल ग़नी खां साहब (भोगाँव) 44
15. 35 - हजरत जनाब मुंशी रामचन्द्र साहब (महात्मा जी महाराज) (फतेहगढ़) 48
16. 35A - हजरत जनाब महात्मा रघुबर दयाल जी साहब (कानपुर) 75
17. 35B - हजरत जनाब महात्मा डॉ॰ कृष्ण स्वरूप साहब (जयपुर) 94

समर्थ सद्गुरु परमसंत

महात्मा श्री रामचन्द्र जी

फतेहगढ़ (उ० प्र०)

जन्म: 2 फरवरी 1873 निर्वाण: 14 अगस्त 1931

परम सन्त महात्मा श्री रघुवर दयाल जी

कानपुर (उ० प्र०)

जन्म 7 अक्टूबर 1875 निर्वाण 7 जून 1947

परमसंत महात्मा कृष्णस्वरूपजी
जयपुर (राजस्थान)

परम सन्त डॉ॰ हरनारायण जी सक्सेना

जयपुर

http://www.harnarayan-saxena.com/home.html

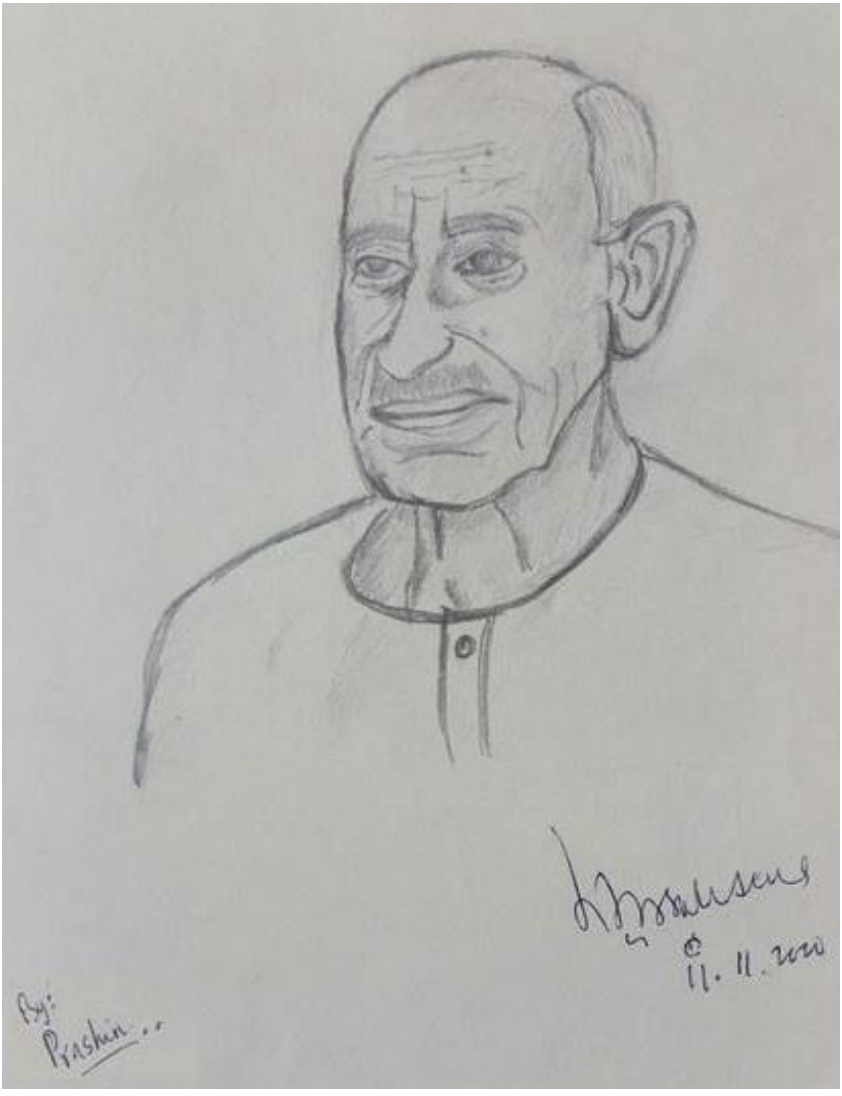

By:
Prashin..

जीवन-वृतांत
हिन्दुस्तान में नक्शबंदिया सिलसिले के बुजुर्ग व उनकी समाधियाँ

प्राक्कथन

जुलाई 1925 में अपनी कालेज शिक्षा प्राप्त करने के लिये मैं कानपुर गया था । सौभाग्य से सितम्बर 1925 में पहले परम सन्त श्रीमान् महात्मा मुंशी रघुवरदयाल साहब (चच्चा जी महाराज) की सेवा में पहुँच गया और फिर शीघ्र ही मुझे परम सन्त सद्गुरु महात्मा मुंशी रामचन्द्र साहब (लालाजी महाराज) के दर्शन हुए । उसी समय से मैं आप दोनों परम सन्तों के आकर्षण के कारण उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आ गया। फिर सौभाग्य से मार्च 1928 में श्रीमान् लाला जी महाराज द्वारा दीक्षित होकर नियमित रूप से इस सिलसिले का एक छोटा सेवक (सदस्य) बन गया।

अब से सौ वर्ष से भी अधिक हुए जब परम सन्त सद्गुरु श्रीमान लाला जी महाराज ही इस सिलसिले नक्शबन्दिया मुजहद्दिया मजहरिया में सन् 1895-96 में दीक्षित होकर इस आध्यात्म परम्परा के मुस्लिम परम सन्तों से इस परम्परा को भारत के हिन्दू सम्प्रदाय के सदस्यों के लिये लाये। इनके पहले इस सिलसिले में मुस्लिम समुदाय के सदस्य ही दीक्षित होते रहे।

प्रकृति का नियम है कि आध्यात्मिक मार्ग में सारी शक्ति, मार्गदर्शन तथा हर प्रकार की इस मार्ग में प्रगति की प्रेरणा तथा सहायता अपने सद्गुरुओं द्वारा ही मिलती रहती है। यदि आपका सम्पर्क अपने सद्गुरु द्वारा इन सिलसिले के सन्तों द्वारा नहीं है तो आपकी सारी साधना अधूरी ही है-पूर्ण नहीं।

आध्यात्म के प्रारम्भिक स्तरों से लेकर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर तथा कारण के स्तरों में पहुँचना तथा इससे भी आगे उस सर्व-शक्तिमान परम पिता परमात्मा भगवान नारायण में लय विलय की स्थिति को प्राप्त करना गुरु शक्ति के बिना सम्भव

नहीं है।

ध्यान की थोड़ी-बहुत क्रिया तो आध्यात्म से सम्बन्ध न रखने वाले भी कुछ साधारण अभ्यासों द्वारा प्राप्त कर लेते हैं-जिससे कुछ सांसारिक (शारीरिक-मानसिक) सफलता मिलती हुई दिखती है परन्तु इसका आध्यात्म अर्थात् परम पिता परमात्मा भगवान नारायण तक पहुंचने से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

हमारे श्रीमान् लालाजी महाराज को जो आध्यात्म प्राप्त हुआ उसका कारण भी भगवान नारायण की प्रेरणा ही थी। अन्यथा आजकल के मुस्लिम सम्प्रदाय के धर्म के (तथा आध्यात्म विषय के) विषय में संकीर्ण विचारों को देखते हुए इस आध्यात्म का हस्तान्तरण मुस्लिम संप्रदायों से बाहर अन्य धर्मावलम्बियों को मिल जाना संभव ही नहीं था।

हमारे दादागुरु (अर्थात् श्रीमान लालाजी महाराज के सद्गुरु देव) को दो पीढ़ी ऊपर से यह आज्ञा प्राप्त हुई थी कि इस आध्यात्म को भारत के हिन्दू सम्प्रदाय के सुयोग्य महापुरुषों को हस्तान्तरण किया जावे। इसके अतिरिक्त वे स्वयं सांप्रदायिक संकीर्णता से बहुत ऊपर उठे हुए थे। यह सब विवरण आपको 32वीं, 33वी पीढ़ियों के महापुरुषों के जीवन-वृतान्त में मिलेगा।

इस सबके अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि इस आध्यात्म का प्रचार सर्वप्रथम हजरत जनाब पैगम्बर साहब द्वारा हुआ। परन्तु भारत तथा ग्रीस, मेसोपोटामिया आदि देशों में जहाँ बहुत-बहुत पुरानी सभ्यताओं का इतिहास मिलता है, उनमें भी ध्यान के द्वारा बड़े-बड़े कार्य तथा आध्यात्मिक उन्नति का वर्णन मिलता है। अतः यह आध्यात्म की जानकारी तथा प्रचार इस्लाम धर्म के अवतरण से बहुत पहले से भी होने का अनुमान होता है।

लगता है कि उस समय का इतिहास, जो कुछ भी मौखिक अथवा लिखित रहा हो-वह समय के प्रभाव से उपलब्ध नहीं रहा और मध्य कालीन साहित्य में ही सब कुछ प्राप्त (Available) हो सका।

हमें यह आध्यात्म जिनके द्वारा मिला उनके आदर्शों, आदेशों का पालन हमारे लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है । अतः हमें अपना मार्ग इन्हीं के आदेशों के अनुसार बनाना उपयुक्त लगता है। हम प्रत्यक्ष अनुभव भी कर रहे हैं कि इन सद्गुरुओं द्वारा ही हमें पूरी शक्ति, सामर्थ्य मिल रही है और आध्यात्म की अन्तिम स्थितियों तक पहुंचने का मार्गदर्शन भी प्राप्त हो रहा है । अतः जो शक्ति, सामर्थ्य हमें अब प्राप्त हो रही है उसका विचार करके अपने लिए एक प्रकार की दुविधा की स्थिति बना लेना, हमें तो उपयुक्त नहीं लगता।

इस विषय में हमारे श्रीमान् लालाजी महाराज के सद्गुरु हुजूर जनाब फ़ज़्ल अहमद ख़ाँ साहब का भी फरमाना था कि यह विद्या हिन्दुओं की थी और अब उन्हीं को हस्तान्तरित की जा रही है।

आशा है पाठक गण का इस जीवन-वृतांत से आध्यात्मिक लाभ होगा व उनके ईश्वर-प्रेम में वृद्धि होगी।

-डॉ॰ हरनारायण सक्सेना 3 सितम्बर, 1997

जीवन-वृतांत

हिन्दुस्तान में नक्शबंदिया सिलसिले के बुजुर्ग व उनकी समाधियाँ

हम सभी सत्संगियों को यह ज्ञात होना चाहिए कि हमारे बुजुर्ग गण कौन थे व हमारी यह संत परम्परा (सिलसिला) कहाँ से शुरू होती है। हमें अपने गुरु में समर्पण व निष्ठा के साथ-साथ यह भी पता होना चाहिए कि उनके भी गुरु कौन थे, इत्यादि। हमारी परम्परा का आरम्भ हजरत जनाब मुहम्मद साहब (रह०) से हुआ। वे हमारे प्रथम गुरु हैं। उनके बाद 17वीं पीढ़ी में आचार्य प्रवर चक्र बंधन (नक्शबंदी) ख्वाजगान शाह बहाउद्दीन सा० (रह०) का प्रादुर्भाव हुआ। वे नक्शबंदिया परम्परा के तत्कालीन प्रथम गुरु (आविर्भावक) माने गए। ध्यान की क्रिया से पूर्णता प्राप्त कराना तथा शक्तिपात द्वारा अन्यों को हस्तान्तरित करना आप ही के द्वारा नियमित किया गया। फिर उसके बाद 24वीं पीढ़ी में एक विलक्षण संत हुए। जिनका नाम हजरत बाकी बिल्ला सा० (रह०) था। ये ही भारत में आये और आप ही के द्वारा नक्शबंदिया सिलसिला फैला। इस पुस्तक के आखिरी पृष्ठों में पूरा शिज़रा दिया गया है।

हिंदुस्तान में निम्नलिखित बुजुर्ग 35वी पीढ़ी तक के इस सिलसिले के हुए-

24वी पीढ़ी- हज़रत ज़नाब बाकीबिल्ला साहब (दिल्ली)

25वीं पीढ़ी- हजरत जनाब गौसुल आज़म शेख अहमद साहब फारुकी (सरहिंद-पंजाब)

26वीं पीढ़ी- हजरत जनाब मासूम रज़ा साहब (सरहिंद-पंजाब)

27वी पीढ़ी- हजरत जनाब सैफुद्दीन साहब सरहिंद-पंजाब

28वीं पीढ़ी- हजरत जनाब नूर मुहम्मद साहब (दिल्ली)

29वी पीढ़ी- हजरत जनाब शम्सुद्दीन मिर्जा जानजाना साहब (दिल्ली) 30वीं पीढ़ी- हजरत जनाब नईमउल्ला साहब (बहराइच)

31वीं पीढ़ी- हजरत जनाब मुरादुल्ला साहब (लखनऊ)

32वीं पीढ़ी- हजरत जनाब कुतुब साहब अबुलहसन सा॰ नसीराबादी (रायबरेली)

33वीं पीढ़ी- हजरत जनाब मौलवी अहमद अली खां साहब (कायमगंज)

34वीं पीढ़ी- हजरत जनाब मौलवी फ़ज़्ल अहमद खां साहब (रायपुर) व मौलवी अब्दुल ग़नी खां साहब (भोगांव)

35वी पीढ़ी- हजरत जनाब महात्मा मुंशी रामचन्द्र सा॰ (फतेहगढ़) हजरत जनाब महात्मा रघुवर दयाल सा॰ (कानपुर)

हजरत जनाब डॉ॰ कृष्ण स्वरूप सा॰ (अजमेर-जयपुर) मेरा परम सौभाग्य है कि मैं उपरोक्त सभी परम सन्त महानुभावों की समाधियों पर अपना सज़दा अदा कर सका हूँ। गुरु भगवान को कोटि-कोटि धन्यवाद है कि मेरे जीवन की यह साध पूरी हुई। मैं अब 90वें वर्ष में प्रवेश कर चुका हूँ पर अब भी जब कभी अवसर मिलेगा मैं इन बुजुर्गों की समाधियों पर जाता ही रहूंगा।

मेरे इस लेख का अभिप्राय यह है कि मैं सत्संगी भाइयों को अपने यात्रा वृतांत के द्वारा इन समाधियों का परिचय दूँ जिससे वे अपने जीवन में कभी न कभी इन सभी समाधियों पर पूजा कर अपना जीवन धन्य कर सकें। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इन सभी समाधियों की (हो सके तो सिलसिले वार) यात्रा एक महा तीर्थ अर्थात् महा कुंभ है। इसका पुण्य (सवाब) भी अवर्णनीय है। इन सभी स्थानों पर फ़ैज (कृपा धार) की जो नदी (दरिया) बहती है वह थोड़ी ही देर में सराबोर कर देती है। सभी सत्संगी भाई 35वीं पीढ़ी के बाद भी जो गुरुदेव हुए हैं तथा वे (सत्संगी) जिनसे संबद्ध हैं अपने गुरुदेव के स्थानों व समाधियों पर अवश्य जाएँ व वहाँ पर भी उन्हें वही कृपा धार का प्रवाह मिलेगा। यही हमारी परम्परा (सिलसिले) की विशेषता है कि कड़ी से कड़ी जुड़ी हुई है।

मैं 24वीं पीढ़ी से 34वीं पीढ़ी तक प्रत्येक बुजुर्ग के समाधि स्थान के तथा उन बुजुर्ग के विषय में संक्षिप्त वर्णन (बयान) करने का प्रयत्न कर रहा हूँ जिससे सभी सत्संगी भ्राता लाभान्वित हों। 35वीं पीढ़ी के बुजुर्गों का वर्णन थोड़ा विस्तार से किया गया है।

24 - हजरत जनाब बाकी बिल्ला साहब (दिल्ली)

भारतवर्ष में यह परम्परा (सिलसिला) आप ही से आरम्भ होता है। इनसे पहले के बुजुर्ग भारतवर्ष में नहीं आए। मुझे दिल्ली में ही इन बुजुर्ग के बारे में पहले कभी जानकारी मिली और सन् 1992 में ही एक मुबारक दिन इनकी समाधि पर पहुँच गया था। फिर तो लगभग हर वर्ष ही कम से कम एक बार वहाँ जाता रहा। आपका जन्म काबुल में सन् 1562 में हुआ। बचपन से ही आपके चेहरे पर एक तपस्वी व इंद्रिय निग्रह महात्मा के लक्षण दिखते थे। आपको हजरत नक़्शबंद (17वीं पीढ़ी) की दिव्यात्मा ने अंतःकरण में नाम जप अभ्यास करने की प्रेरणा व सामर्थ्य (तौफीक) दी और ईश्वर प्रेम के जज्बे से हृदय (दिल) को भर दिया। हजरत बाकी बिल्ला साहब की बचपन में सतगुरु की खोज (तलाश) के लिए व्याकुलता (बेचैनी) इतनी विकट थी कि आपकी पूज्य माता जी आराधना करती थीं कि हे ईश्वर या तो मेरे बेटे की इच्छा (ख्वाहिश) पूरी कर या मुझे मृत्यु (मौत) दे दे-क्योंकि मैं उसे इतना तड़पता हुआ नहीं देख सकती। आपके गुरु मौलाना ख्वाजगी इमकंगी साहब थे, जिन्होनें स्वप्न में दर्शन देकर इन्हें अपने पास बुलाया। मौलाना इमकंगी साहब भी एक विलक्षण संत थे व आध्यात्म जगत के सूर्य थे। यहाँ तक कि बादशाह लोग आपकी चौखट की मिट्टी का सुर्मा बनाते थे। मौलाना इमकंगी साहब ने बाकी बिल्ला साहब को पूर्ण करके हिंदुस्तान जाने का आदेश दिया और कहा कि वहाँ पर तुम से एक आध्यात्मिक साधना पद्धति प्रचलित होगी।

आप दिल्ली आए। आप एक गुप्त संत थे। अपनी आत्मिक स्थितियों को गुप्त रखते थे। अपने दुर्गुणों को ही देखने की प्रवृत्ति तथा अमानी भाव आप में पूर्ण रूप से समाहित था। अगर कोई दीक्षा लेने आता तो उसे विवशता दिखा कर वापस कर देते व कहते भाई मैं इस लायक नहीं हूँ तुम्हें किसी का पता लगे तो मुझे भी बतलाना, मैं भी उनकी सेवा (खिदमत) में उपस्थित हाजिर होऊंगा। पर किसी में सच्ची जिज्ञासा (वाकई तड़प) देखते तो तत्काल शरण में ले लेते थे। आपकी निस्बत में भावावेश अत्यधिक था। जिस पर आपकी दृष्टि (नजर) पड़ती वह बेबस व विकल (बेचैन) हो जाता था। कुछ लोग तो केवल आपकी मुखाकृति (सूरत) देखकर ही अवधूत हो गए थे। एक बार एक व्यक्ति पर आपने सिर्फ इसलिए कृपा

कर दी क्योंकि वह इनके प्रिय शिष्य का नौकर था। वह नौकर भावावेश में मज्जूब हालत में जब अपने स्वामी के पास पहुंचा तो वे बोले हजरत ख़्वाजा बाकी बिल्लाह इस बेचारे के सामने पड़ गए और सूर्य का प्रकाश इस कण पर पड़ गया। आप बहुत ही दयालु (बेहद रहमदिल) थे। सफर में कोई बूढ़ा देखते तो अपनी सवारी पर सवार करा देते और आप पैदल चलते और जब शहर निकट (करीब आता आप फिर सवार हो लेते जिससे कि उनका वह पुण्य कार्य लोगों से गुप्त रहे। एक बार आधी रात के बाद नमाज के बाद जब बिस्तर पर आए तो देखा बिछौने के लिहाफ़ में एक बिल्ली बैठी हुई है। आप प्रात: (सुबह) तक सर्दी में कष्ट उठाते रहे पर बिल्ली को लिहाफ़ से नहीं उठाया। अगर इनके किसी शिष्य से भूल वश कोई अपराध हो जाता तो कहते यह मेरे ही दुर्गुणों का कारण है। अगर यह दुर्गुण मुझ में न होता तो इसमें प्रतिबिंबित न होता। आपका जीवन इंद्रिय-निग्रह, ईश्वर पर विश्वास (भरोसा) संतोष व दीनता का उदाहरण था। भोजन व कपड़ों का आपको होश नहीं रहता था। एक बार आपकी महफिल में किसी के मुँह से 'अल्लाह' का शब्द निकल गया। आपने फरमाया शिष्टाचार का ध्यान रखा जाए व साधना गुप्त रहनी चाहिए व्यक्त अथवा सार्वजनिक नहीं होनी चाहिए। आप यथा नाम तथा गुण थे। 'बाकी बिल्लाह' का अर्थ होता है 'जो परमात्मा में निरंतर एकीभाव से स्थित हो।'

आश्चर्य की बात यह है कि आप सिर्फ 4० वर्ष जिए व सिर्फ तीन-चार वर्ष सतगुरु की पदवी पर रहे। अपनी पत्नी को पहले ही कह दिया कि मैं चालीस वर्ष पर शरीर छोड़ दूंगा क्योंकि जिस उद्देश्य के लिए मैं आया था वह पूरा हो गया। वह उद्देश्य उन्हें उनके प्रिय शिष्य हजरत जनाब गौसुल आज़म शेख अहमद साहब फारुखी (रह०) को तैयार व पूर्ण करने का था। आपने मृत्यु के समय फरमाया कि मृत्यु अगर ऐसी ही है तो बड़ी देन है और ऐसी स्थिति हालत से निकलने का दिल नहीं चाहता। आपने सन् 1603 में शरीर छोड़ा।

समाधि-आपकी समाधि नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से दो किलोमीटर दूर कुतुब रोड़ पर नबी करीम के पास ईदगाह में है। ईदगाह में अंदर जाकर मस्जिद के पिछवाड़े में छोटी सी समाधि है व तीन तरफ से अहाता बना हुआ है। आप संतों (फ़क़ीरों) के सम्राट थे। पूर्ण आदर भाव अदब से आपकी समाधि पर जाना चाहिए

और अपना परिचय देकर कृपा की भीख मांग़नी चाहिए। यहां फ़ैज़ की अटूट वर्षा होती है जो अवर्णनीय है।

25 - हजरत जनाब गौसुल आजम शेख अहमद साहब फारुखी

(सरहिंद-पंजाब)

मैं आपकी समाधि पर कई बार गया। पहली बार (कभी सन 1973 में) कुछ जानकारी नहीं की व अपनी बुद्धि के अनुसार ऊपर छतरी में जाकर बरान्डे में बैठ कर पूजा ध्यान आदि किया। दूसरी बार वहां के सज्जादानशीन श्रीमान याहया साहब से मुलाकात हुई। उन्होंने दरगाह शरीफ का द्वार खोल कर हमें अंदर ले जाकर बिठा दिया। उस समय मेरे साथ महात्मा नरेन्द्र मोहन (जयपुर वाले चच्चा जी महाराज के सुपुत्र) भी थे। हजरत गौसुल आजम साहब दूसरे नाम से मुजद्दिद सा० भी कहलाते थे। आप बहुत बड़े बुजुर्ग थे। मेरे गुरुदेव श्रीमान महात्मा रामचन्द्र जी साहब फतेहगढ़ का कहना था कि मुजद्दिद साहब जैसे बुजुर्ग एक हजार साल में आते हैं। अभी 18 मई 1997 को फिर आपकी समाधि पर यात्रा की व फिर एक बार प्रकाश के सागर (नूर के चश्मे) में स्नान किया। इस बीच में दो बार और इन संत की समाधि पर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आपका जन्म भी सन् 1562 में हुआ था। आप 17 साल की उम्र में ही परम विद्वान हो गए थे। कालांतर में इतने बड़े परम संत (बुजुर्ग) हुए कि सभी सिलसिले (नक्शबंदिया के अलावा भी) आप में समाहित हुए। आपको आपके गुरु हजरत जनाब बाकी बिल्लाह साहब ने तत्काल शरण में ले लिया था व अपने को जाहिर कर दिया था। पहली भेंट में वो हालतें पैदा हुईं कि जो कभी देखने व सुनने में नहीं आईं। दो महीने व कुछ दिन के समय में पूर्ण विद्या आप में स्थानांतरित कर दी। यह भी कहा कि तुम्हारे बारे मैं मेरे गुरुदेव ने पहले ही भविष्यवाणी कर रखी थी कि तुम से सारा संसार दैदीप्यमान (रोशन) होगा।

आपके गुरु हजरत बाकी बिल्ला साहब फ़रमाते थे कि हजरत मुजद्दिद अलफिसानी (रह०) (आपके शिष्य) सूर्य हैं व हम जैसे सितारे इनकी रोशनी में खोये हुए (गुम) हैं। अपने शिष्य के लिए गुरु के ऐसे शब्द (बयान) कभी देखने सुनने में

नहीं आए। उधर शिष्य का यह हाल था कि अत्यधिक आदर (अदब) व विश्वास (एतकाद) रखते थे। एक बार आपके गुरु ने किसी मामूली काम के लिए बुलवाया तो सुन कर मारे भय (खौफ) के आपके चेहरे का रंग बदल गया व तमाम बदन में कंपकंपी पैदा हो गई व सकते के आलम में आ गए। आप के गुरु ने आपको मुराद की श्रेणी में रखा था। मुराद वे होते हैं जिनमें गुरु स्वयं लय होता है। ऐसे मुराद की स्थिति का वर्णन कबीर दास जी ने इस प्रकार किया है "मेरा राम मोको भजे, तब पाऊं विश्राम।" आपके गुरुदेव ने अपने स्वयं के पुत्रों व परिवार पर तवज्जोह अपने शिष्य से करवाई व कुछ समय बाद चालीस वर्ष की आयु में शरीर छोड़ दिया। जैसे ही शिष्य को हजरत बाकी बिल्लाह साहब के शरीर छोड़ने का समाचार मिला वे अत्यन्त व्याकुल हो गए व बाद का जीवन अतीव विरह में व्यतीत किया।

हजरत गौसुल आजम ने अपनी पुस्तकों में अपने एक विशिष्ट अनुभव का बयान किया है व उसे विराट रूप दर्शन (दायरा ग़जब इलाही) का नाम दिया है। इसमें काफी विस्तार से ईश्वर के विभिन्न रूपों का, रौद्र तथा मनमोहक सुंदर रूपों का वर्णन है जो भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कराया था, उससे बिलकुल मिलता है। फिर इससे ऊपर के घाटों की सैर के बारे में भी विस्तार (तफ्सील) से लिखा है। फिर लिखा है "सबसे ऊंचे मुकाम की सैर हुई जिसके लिए खुदा का लाख-लाख शुक्र है और जो वर्णन से परे है।"

आपने भी अपनी मृत्यु की पूर्व घोषणा कर दी और कहा कि चालीस से पचास दिन के बीच दुनिया से जाना होगा। जब चालीस दिन निकल गए तब कहा "अब देखिए इन पाँच-सात दिनों में क्या होता है।" व उन्हीं पाँच-सात दिनों में एक दिन बोले यह मेरी आखिरी नमाज थी। कुछ समय बाद शरीर त्याग दिया। यह सन् 1624 की बात हैं। अपने शरीरांत से पहले अपने तीसरे सुपुत्र को बुलाकर, जिन्हें वे भगवान का प्यारा (महबूबे-खुदा) कहते थे और जिन्हें वे मात्र 14 वर्ष की उम्र में ही पूर्ण कर चुके थे, को सम्पूर्ण विद्या प्रदान कर गए। उनके पुत्र ने भी अपने पिता का नाम रोशन किया व करीब नौ लाख लोगों को दीक्षित किया जिनमें सात हजार शिष्य ईर्शाद (सतगुरु) हुए। जब शरीरांत के पहले हजरत गौसुल आजम ने अपने सुपुत्र को मनसब कय्यूमत (एक आध्यात्मिक पदवी) प्रदान की तो पुत्र इस महान

सम्मान पर ज़ार-ज़ार रोने लगे।

समाधि-आपकी समाधि अंबाला (पंजाब) से 40-45 किलोमीटर दूर लुधियाना रोड़ पर सरहिंद कस्बे में है। सड़क से 4-5 मील सिक्खों के गुरुद्वारे फतहगढ़ साहब से बिलकुल पास है। असली नीचे है और उसका भव्य प्रतिरूप सुरक्षा की दृष्टि से ऊपर छतरी आदि के रूप में बनाया हुआ है। वहाँ जाकर वहाँ के अधिष्ठाता (जो अभी श्रीमान याहया साहब है) से अपना परिचय देना चाहिए। समाधि पर अत्यधिक शांति विराजती है व आध्यात्मिक लाभ बहुत होता है चाहे वह उस समय मालूम न हो। आप सिलसिले के संतों की परम्परा में विशिष्ट थे व महान आदरणीय हैं। समाधि पर कृपा धार (फ़ैज) का वर्णन लेखनी द्वारा संभव नहीं है। स्वयं ही समझा (महसूस) किया जा सकता है।

26 - हजरत जनाब मासूम रज़ा साहब (सरहिंद-पंजाब)

यह सौभाग्य की बात है कि हजरत जनाब मासूम साहब की भी समाधि, और 27वीं पीढ़ी के बुजुर्ग हजरत जनाब सैफुद्दीन सा॰ की समाधि भी उसी परिसर में है। सरहिंद पंजाब की यात्रा से हम उन तीन महान बुजुर्गों की सेवा में उपस्थित हो सकते हैं जो तीनों ही परम विलक्षण थे और, हमारे सिलसिले के आधार स्तंभ थे। उचित तो यह है कि तीन दिन का कार्यक्रम बना कर प्रत्येक दिन एक-एक बुजुर्ग के लिए रखा जाए तो एक तरह से तीन दिन का भंडारा हो जाता है। पर समयाभाव में सुबह दिल्ली से जाकर, तीनों स्थानों पर पूजा कर, रात तक लौटा भी जा सकता है। हमें ऐसा ही करना पड़ा था।

आप हजरत गौसुल आजम मुजद्दिद साहब के तीसरे सुपुत्र व मुख्य शिष्य थे। आपका जन्म सरहिंद में ही सन् 1598 में हुआ था। जैसा बताया जा चुका है आपके पिताजी आपको महबूबे खुदा कहते थे व बहुत कम उम्र में आपको पूर्ण कर चुके थे। आपके लिए आपके पिताजी ने एक पत्र में लिखा है "मुहम्मद मासूम की सुपात्रता (फरजंदगी) के बारे में क्या लिखूँ। वे स्वयँ इस दौलत के काबिल हैं और खास विलायत मुहम्मदिया हासिल किए हुए हैं।" एक बार जब पुत्र (मासूम सा॰) सो रहे थे और पिता हजरत गौसुल आजम आए तो नौकर ने चाहा कि मासूम साहब को जगाएँ पर पिता ने रोक दिया और कहा "अल्लाह का दोस्त आराम करता है, खौफ लगता है, उसे तकलीफ न पहुँचे।" चौदह वर्ष की उम्र में पिता ने फरमाया "तुम कुतुबे वक्त (समय के संत शिरोमणि) होंगे व इस भविष्यवाणी (बशारत) को याद रखना।" सचमुच यह भविष्यवाणी सार्थक हुई और संसार आपके आध्यात्म रूपी प्रकाश पुंजों तथा उपहारों से परिपूर्ण हो गया। आपके द्वारा लाखों की बैत दीक्षा हुई व हजारों को आपने पूर्ण किया व स्वयं कय्यूमत की पदवी प्राप्त की। आपकी एक हफ़्ते की सोहबत से साधक को फना (लय अवस्था) व बका (ईश्वर में एकाकी भाव से स्थिति) प्राप्त हो जाती थी। आपका कश्फ (त्रिकालज्ञता) परम विशेष था। सम्राट भी आपके सत्संग में आता और जहां जगह मिलती बैठ जाता था। जो निवेदन करना होता लिखित रूप में पेश करता। आप मृत्यु (कजा) तब्दील करने की क्षमता रखते थे और कह कर भाग्य रेखा बदल देते थे। पर सिद्धान्तों में बड़े कट्टर थे। खुद

के दामाद के व्यभिचार की शिकायत आने पर कहा कि वह मर जाएगा। सुपुत्रियों ने अर्ज किया कि जीता रहे। फरमाया बस अब जो होना था हो गया। अब धर्म पर रहने (ईमान) की दुआ करो। अतः इसके तीसरे चौथे दिन दामाद का शरीरांत हो गया।

आपने भी अपने शरीरांत की पहले से भविष्यवाणी कर दी थी और महीना निश्चित कर दिया था। शरीरांत के एक दिन पहले नमाज के बाद फरमाया "उम्मीद नहीं कि कल इस वक्त दुनियाँ में रहूँ।" अंतिम समय जप आदि करते हुए सन् 1668 में आपका शरीरांत हुआ।

समाधि-आपकी पवित्र समाधि सरहिंद परिसर में ही आपके पिताजी की समाधि से करीब दो सौ मीटर दूर बनी हुई है। सुंदर कुन्जों व पेड़ों के बीच सुंदर मकबरा बना हुआ है। यहां ध्यान करने पर समाधि लग जाती है। आपकी समाधि पर पवित्रता का ख्याल रखना चाहिए। अच्छा यह होगा कि आपकी समाधि पर पूरे एक हफ़्ते हाजिरी दी जाए, शायद उनकी कृपा से फना व बका हासिल हो जैसा कि उनके साथ रहने से उनके जीवन काल में होना मशहूर था।

27 - हजरत जनाब सैफुद्दीन साहब (सरहिंद-पंजाब)

जैसा बताया जा चुका है, आपकी समाधि भी सरहिंद परिसर में आपके पिता व पितामह की समाधियों के पास है। आप भी बहुत बड़े संत (बुजुर्ग) थे व युवावस्था में पूर्ण समर्थ संत शिरोमणि की स्थिति को पहुँच गए थे। आप में महान आध्यात्मिक क्षमता थी।

मैं अभी कुछ समय पहले तक आपकी मजार शरीफ पर नहीं जा पाया था। सिवाय आपके 24 से लेकर 35 तक सभी बुजुर्गों के स्थानों पर तो हाजिरी दे सका था-बस आपकी हाजिरी रह गई थी जिसकी फिक्र थी कि इस जिंदगी में ही इन हुजूर के दरगाह शरीफ पर और सलाम पेश कर आता। यह मुराद मेरी ता॰ 18 मई 97 को पूरी हो गई जिसमें इन बुजुर्ग के अलावा और सभी बुजुर्गों की कृपायें (महरबानियां) शामिल हुईं तो यह काम भी पूरा हो गया। गुरु भगवान को इसके लिए कोटि-कोटि धन्यवाद है।

आपका जन्म सर 1640 में सरहिंद में हुआ। ग्यारह वर्ष की उम्र में आपके पिताजी ने आपको फनाए कल्ब की बशारत अता फरमाई और आपकी महान आध्यात्मिक क्षमता को देखते हुए वे हर क्षण आपकी आध्यात्मिक प्रगति का ध्यान रखते थे। एक बार बादशाह ने आपके पिताजी से विनय की कि अपना कोई शिष्य मेरे मार्गदर्शन व तवज्जोह के लिए भेजिए। आपने सुपुत्र हजरत सैफुद्दीन साहब को वहाँ भेजा व आप कार्य सम्पन्न करके आए। आपके सत्संग मजलिस में इस क़दर लोगों की भीड़ होती थी जो बयान के बाहर है। आप कहते थे कि पूर्णता के लिए सिर्फ सदैव हृदय की चौकसी व सतगुरु का सत्संग काफी है। आपके पास हजरत नूर मुहम्मद बदायूंनी नामक मेघावी व उच्च कोटि के विद्वान आए जिन्हें आपने अपना खलीफा व खास शिष्य बनाया। आपके सत्संग में सैकड़ों की संख्या में लोग होते थे मगर आप हर एक का हाल भली प्रकार जानते थे व जैसी जिसकी आवश्यकता होती, पूर्ति करते थे। आप कहते थे मैं क्या ईश्वर से दोस्ती का दम भरूँ, मैं उसकी गली के दीन मँगतों में सबसे गया-बीता हूँ।

आप अपने समय के महान संत थे व आपका प्रकाश (जमाल) आज भी पुरअसर है। आप बहुत ही गुप्त संत थे व अपने पिता और पितामह की सम्पूर्ण उपलब्धियों को प्राप्त किए हुए थे।

आपने भी अपने शरीरांत की पहले से घोषणा कर दी थी। आप सन् 1687 में 47 वर्ष की उम्र में शरीर त्याग गए। जब लोग ज़नाज़े को दफन करने चले तो जनाजा लोगों के हाथों से ऊपर उठ कर हवा में जाता था। बहुत लोग चाहते थे कि कंधा दें मगर संभव नहीं था। समाधि के स्थान पर पहुँच कर स्वयं ही नीचे रख गया। आपकी मृत्यु के पचास वर्ष बाद आपकी समाधि वर्षा में बैठ गई उसमें हूबहू वही सुगंध आ रही थी जैसी आपको दफ़नाने के समय लगाई गई थी व शरीर भी ठीक वैसा ही था जैसा पहले दिन था। समाधि-आपकी समाधि भी उसी परिसर में आपके पिता व पितामह की समाधियों से करीब दो सौ मीटर दूर है। वहाँ बैठ कर परम आत्मानंद का अनुभव होता है व नूर का चश्मा बहता सा महसूस होता है। सभी सत्संगियों के लिए सरहिंद शरीफ की हाजिरी एक गर्व व सौभाग्य का विषय है।

28 - हजरत जनाब नूर मुहम्मद साहब (दिल्ली)

हजरत नूर मुहम्मद बदायुवी (रह०) इल्म जाहिर में मेधावी व उच्च कोटि के विद्वान थे। आप हजरत सैफुद्दीन साहब के सुयोग्य शिष्य साबित हुए व साधना की सर्वोच्च स्थितियों को आपने प्राप्त किया। आपकी समाधि दिल्ली में है जहां आसानी से पहुँचा जा सकता है।

हजरत नूर मुहम्मद सा० आध्यात्मिक साधना के शुरु के 15 वर्षो में लगातार तल्लीन रहते थे। सिर्फ नमाज के समय तल्लीनता टूटती थी, नमाज व नित्य कर्म के बाद फिर तन्मयता की स्थिति को प्राप्त हो जाते थे। यह सिलसिला 15 वर्ष तक चला। शारीरिक रूप से असर यह हुआ कि आपकी पीठ टेढ़ी हो गई। भोजन के स्वाद व किस्म से आपको कोई लगाव नहीं था। जो मिला सो खा लिया। अमीरों का खाना कभी नहीं खाते थे क्योंकि उसमें संदेह बना रहता है। किसी दुनियादार की किताब भी तीन दिन तक रख कर फिर पढ़ते। फ़रमाते दुनियादारों की सोहबत से किताब तक पर तमस की तह लिपट गई है। कश्फ (त्रिकालज्ञता) जबरदस्त रूप से सही होता था। फ़रमाते थे बुरे लोगों की मुलाकात से आध्यात्मिक प्रवाह रुक जाता है। अगर आप से मिलने कोई आ रहा है और रास्ते में किसी व्यभिचारी या शराबी से मिल भर लिया तो आप तुरंत बता देते। आपके शिष्य जो भी जाप करके आए होते आप हूबहू बता देते। कहते इंद्रिय निग्रह से समर्थ सन्त पद की निकटता (कुर्ब विलायत) मिलती है। जो भी आपके पास गया निराश नहीं हुआ। यदि कोई हंसी में भी आपके पास चला गया तो भी आपने सिलसिले में दाखिल करके उसका उद्धार कर दिया। आप बड़े कोमल स्वभाव के थे, किसी को परेशान देखा, उसकी परेशानी तुरन्त दूर करते थे। कहते थे तू ईश्वर को भी चाहता है और कमीनी दुनिया को भी, यह दोनों काम नहीं हो सकते। अनात्म वस्तुओं का त्यागना और इच्छाओं से मुँह मोड़ लेना चाहिए ताकि स्वीकृति का द्वार खुले। आपने सन् 1716 में शरीर छोड़ा।

समाधि-आपकी समाधि नई दिल्ली में निजामुद्दीन के पास लोदी होटल से एक किलोमीटर दूर हिंदुओं की श्मशान के बगल में पंचपीर के नाम से जानी जाती है

। कब्रिस्तान में काफी अंदर जाकर है व पक्के बाड़े के अंदर है। नीम के पेड़ की छाया में बैठ कर अप्रतिम आनंद प्राप्त होता है। समाधि पर जाकर अपना परिचय देना चाहिए व शांत होकर कृपा वर्षा की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

इतने महान बुजुर्ग की समाधि ऊपर से खुली हुई है व कोई छत नहीं है। न ही कोई विशेष रखवाला ही है। हमारे बुजुर्गगण गुमनामी पसंद थे अतः हो सकता है उन्हीं की यह मंशा हो। पर कुछ भी हो, साधकों व सत्संगियों के लिए यह प्रभावी (पुरअसर) स्थान है व याचक भाव से जाने वाले को आध्यात्मिक लाभ अवश्य ही होता है।

29 - हजरत जनाब मिर्जा जानजाना साहब (दिल्ली)

दिल्ली निवासियों का सौभाग्य है कि तीन बड़े बुजुर्गों का स्थान (हजरत बाकी बिल्ला सा०, हजरत नूर मुहम्मद सा० व हजरत जानजाना सा०) दिल्ली में है। इन तीनों स्थानों पर वर्ष में एक बार अवश्य जाना चाहिए और कृपा वर्षा से अपनी झोली भरनी चाहिए।

हजरत मिर्जा जानजाना साहब का जन्म सन् 1696 में (ता. 11 रमजान 1111 हिजरी) को हुआ था। आपके पिताजी की संसार से अत्यधिक विरक्ति थी। पिताजी उच्च पदाधिकारी थे। आप अच्छे कवि भी थे व 'मजहर' के उपनाम से कविता करते थे। वे छोटी उम्र में ही सैन्य कला, विज्ञान, उद्योग आदि मैं शिक्षित हो गए थे। आप तलवार बाजी में पारंगत थे व बीस तलवार बाजों का अकेले सामना करने की सामर्थ्य रखते थे। आपसे किसी ने हजरत नूर मुहम्मद बदायूनी के बारे में जिक्र किया। यह सुनते ही आप बेचैन हो गए और उसी वक्त दर्शन को पहुँचे। हजरत ने भी तत्काल अपना लिया। पहली मुलाकात में ही षट् चक्र जाग्रत कर दिए। घर जाकर मिर्जा जानजाना ने आइने में सूरत देखी तो हजरत नूर मुहम्मद की सूरत पाई। अचंभित रह गए। चार वर्ष की सोहबत में आप समर्थ सतगुरु की स्थिति पर पहुंच गए।

आपके स्वभाव में सहनशीलता व क्षमाशीलता पूर्ण रूप से व्याप्त थी। आप सत्य भाषी, विनम्र व स्नेही स्वभाव के थे। आप आत्म संयम और ईश्वर में भरोसा आदि गुणों में अद्वितीय थे। उस जमाने में नवाब आसिफ शाह ने तीस हजार रुपये आपकी सेवा में भेजे। आपने इकार कर दिया। नवाब ने निवेदन किया "आप कृपया इन रुपयों को जरुरत मन्दों में बंटवा दें।" आपने जवाब दिया "मैं तुम्हारा खानसामा तो नहीं हूँ जो तुम्हारे पैसों को बँटवाता फिरूँ।"

आप फ़रमाते थे कि सद्गुरुदेव का अनवरत चिंतन करने से इतनी फ़ैज की वर्षा होती है कि अंतःकरण आत्मिक अनुभूतियों (अनवार कैफियत) के प्रकाश से लबालब (लबरेज) हो जाता है। आप राज़ी व रज़ा के जबरदस्त हिमायती थे। आप

के कश्फ व करामातें अत्यधिक थीं।

आपने अपनी मृत्यु के कुछ समय पहले सन् 1779 में कहा कि कल मुझे गोली मार दी जाएगी। उन्हें रोका भी गया तो आपने कहा क्या ही उत्तम होगा मैं मृत्यु से शीघ्र मिल लूंगा, फिर प्रीतम के बुलावे में देर क्यों हो। ऐसा ही हुआ एक अभागे ने अगले दिन उन्हें धार्मिक संकीर्णता की वजह से गोली मार दी। हत्यारे को उन्होंने हजरत ईसा की तरह तत्काल क्षमा कर दिया।

समाधि-आपकी समाधि दिल्ली में जामा मस्जिद के पास चितली कबर नामक स्थान पर 'शहीद साहब' के मजार के नाम से जानी जाती है। गली कूचों से जाना होता है पर अंदर शानदार खानकाह बनी हुई है। वहां सज्जादानशीन भी रहते हैं। आपकी समाधि की यात्रा तीर्थ से कम नहीं है। जो अनवार व बरकात महसूस होते है वे दिल ही जानता है। आप हमारे सिलसिले के एक स्तंभ थे इसी वजह से हमारा सिलसिला 'मुजद्दिदिया-मजहरिया' के नाम से जाना जाता है। "मजहर" आपका उपनाम (तखल्लुस) था। इसका उपयोग वे कविता में करते थे।

30 - हजरत जनाब नईमुल्ला साहब (बहराइच)

हजरत मौलवी शाह नईमुल्ला बहराइची हजरत मिर्जा जानजाना के सर्वश्रेष्ठ शिष्यों में थे। आप सिर्फ चार वर्ष अपने गुरु की सोहबत में रहे। हजरत मिर्जा ने फरमाया कि तुम्हारी चार साल की सोहबत औरों की बारह साल की सोहबत के बराबर है। आपके गुरु ने भविष्यवाणी (बशारत) की थी कि तुम्हारे आत्मिक प्रकाश और सत्संग के प्रभाव से संसार (आलम) प्रकाशित (मुनव्वर) होगा। और ऐसा ही हुआ।

आप निहायत सब्र व संतोष से जीवन व्यतीत करते थे व हर समय ईश्वर की याद में तल्लीन रहते थे। आपने आध्यात्म पर पुस्तकें भी लिखीं। आप बहुत शान्त प्रकृति के व एकान्त प्रिय थे। सम्पूर्ण करामातों व विद्याओं के भंडार थे मगर गुप्त ही रहते थे। आप सन्त शिरोमणि थे व आध्यात्म जगत के सूर्य थे। आप बहुत उच्च कोटि के ब्रह्मज्ञानी थे व इल्म सीना-ब सीना (अप्रकट आध्यात्म प्रवाह) में पारंगत थे। पर इतने गुप्त थे कि पास वालों व पड़ौसियों तक को खबर नहीं लगने पाती थी । आपकी पुस्तक 'मामूलात मजहरिया' आदाबे तरीकत में अत्यंत महत्त्वपूर्ण व उपयोगी है। आपके गुरु फ़रमाते थे जो दौलत मैंने तुम्हें दी वह किसी को नहीं दी। इस नैमत का शुक्र व कद्र करनी चाहिए। आपके वंशजों के पास वह दरी अभी भी मौजूद है जिस पर आपके गुरुदेव का खून पड़ा था। आपकी एक हस्तलिखित पुस्तक लंदन के पुस्तकालय में पहुँच गई जो अभी भी मौजूद है।

आपने सन् 1801 में शरीर छोड़ दिया। आपका मकान व 'मौलसिरी वाली मस्जिद' जो आपने बनवाई थी अभी भी बहराइच में है।

समाधि-आपकी समाधि बहराइच में राजकीय इंटर कॉलेज के सामने मैदान में ऊंचे चबूतरे पर बनी हुई है। यह स्थान होटल आराधना के बाईं तरफ पिछवाड़े के मैदान में पड़ता है। समाधि पर जाने के लिए चबूतरे के नीचे छोटे गेट हैं। समाधि पर ऊपर छत नहीं है पर चारों तरफ ऊंचा घेरा बना हुआ है। यहाँ बैठ कर अतीव आत्मिक आनंद आता है व अवर्णनीय शांति मिलती है। यहाँ बैठ कर ऊंची

आध्यात्मिक अवस्थाएं सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। इस स्थान पर जीवन में एक बार अवश्य जाना चाहिए। पर इतने बड़े संत शिरोमणि के स्थान पर शायद अर्थाभाव के कारण कोई नियमित रखवाला नहीं है। आपके वंशज शहर में अभी भी रहते हैं। हमने उनके वंशजों को ढूंढ निकाला व उनसे बातें की व उनके पास इन बुजुर्ग के लेख देखने को मिले।

31 - हजरत जनाब मुरादुल्ला साहब (लखनऊ)

सन्त शिरोमणि एवं पूज्य सत्गुरुओं के गौरव तथा ब्रह्मज्ञान के अथाह सागर हजरत शाह मुरादुल्लाह साहब थानेसर के रईस थे। आप हजरत मौलवी नई मुल्लाह शाह साहब के सुयोग्य शिष्य व खलीफा थे । आप अपने समय के सिलसिले के माने हुए मँजे महापुरुषों में थे। जो भी आपके पास जाता मन चाही मुराद प्राप्त करता था। आप करामातों के भंडार थे। कोई भी एक बार आपके श्री चरणों में पहुंच गया उसे ईश्वर प्रेम से मालामाल कर देते थे। आपके पिताजी हजरत मिर्जा जानजाना ने कृपापात्रों में से थे। वे आपको एक बार उनकी सेवा में ले गए। उस समय आप बच्चे। ही थे। हजरत मिर्जा ने आपको सत्संग में बैठाया और बहुत प्यार किया। जब आप युवा हुए तब तक हजरत मिर्जा शरीर छोड़ चुके थे अतः आप शाह नईमुल्लाह साहब से दीक्षा लेने गए। आपको गुरु ने तकमील के दर्जे पर पहुंचाया अर्थात पूर्ण कर दिया। आपके (मुरादुल्लाह साहब के) पास हजरत जनाब अबुल हसन नसीराबादी पहुँचे तो आपने उन्हें शिष्य रूप में ग्रहण किया व फना व बका के दर्जे तक पहुंचाया। आपने शिष्य को आशीर्वाद दिया और भविष्यवाणी (बशारत) की कि तुम समय के समर्थ सतगुरु (कुतुबे वक्त) होगे। आपकी शिक्षाएं वेदान्त की शिक्षाओं से बिल्कुल

मिलती थीं। आप महा दानी भी थे व साथ ही ब्रह्मविद्या के अपार भंडार थे । आपने 82 वर्ष की उम्र में सन् 1830 में महा समाधि ली।

समाधि-आपकी परम पवित्र समाधि सादगी की मिसाल है इतने बड़े संत और इतने रईस होते हुए भी आपने सादगी की

शिक्षा हिदायत दी। आपकी समाधि लखनऊ में पुराने रायल होटल

के पास (एम एल ए होस्टल के नजदीक) शाह मुरादुल्लाह लेन में हरे रंग की पटी हुई छत के नीचे है। वहां जो आनंद की अनुभूति होती है वह वर्णन (बयान) के बाहर है। बैठते ही समाधि लग जाती

है व देर बाद होश आता है। यह लखनऊ तथा उत्तर प्रदेश वासियों के लिए आध्यात्म प्रवाह का महान स्रोत है। यहां पास में ही आपके वंशज श्रीमान बशीर अहमद फारुखी भी रहते हैं। जीवन में यहां कभी न कभी अवश्य जाना चाहिए। मुझे गुरु भगवान की कृपा से कई बार वहां जाने का अवसर (मौका) मिला जो मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। लखनऊ में ही ऐश बाग में हमारे पूज्य भाई साहब परम संत महात्मा ब्रजमोहन लाल जी साहब की समाधि है। वहाँ भी सद्गुरु कृपा का अनवरत प्रवाह रहता है।

32 - हजरत जनाब क़ुतुब आलम अबुल हसन साहब नसीराबादी

(रायबरेली)

ऑ अबुल हसन कि ताज सरे नक्शबन्द बूद,
मानिन्द ऊ नयामदह साहब तरीक़ते ॥

हजरत जनाब अबुल हसन साहब (रह) जो नक्शबंदिया खानदान के सरताज थे उनकी खास तरह का कोई दूसरा साहब तरीक़त में नहीं आया। आप कर्मनिष्ठ ज्ञानी, धर्मशास्त्र के अद्वितीय विद्वान, एक नजर में आत्मिक शक्ति से ऊंचे से ऊंचे मुकाम पर पहुँचाने वाले व कुतुबे वक्त थे। आप हजरत मौलवी मुरादुल्लाह साहब के खास खलीफा थे। मात्र 18 साल की उम्र में समर्थ सद्गुरु की पदवी पर पहुंच गए थे। आपने अपने गुरु की मौजूदगी में ही अकसर लोगों को फना व बका पर पहुंचाया। आप में खास बात यह देखी गई कि जिसने भी आपको श्रद्धा से देखा वही ईश्वर साक्षात्कार को प्राप्त हुआ। यह बात आज भी उतनी ही सत्य है। आप हजरत ख़्वाजा नईमुल्लाह साहब के धेवते भी थे।

आप दिन में पाँच बार सत्संग कराते थे व सिवाय ध्यान कराने के कोई काम नहीं करते थे। आप की विशेष करामात यह थी कि जो भी आपकी शरण में आ गया उसकी जिंदगी पलट गई व तत्काल ही वह धर्मशास्त्र के अनुकूल आचरण करने लग जाता। जो आपकी शरण में आया थोड़े दिनों में ही संसार में रुहानी फ़ैज फैलाने की क्षमता पा गया।

एक बार आपकी मौसी का लड़का मिलने आया व मन में यह विचार किया कि अगर ये वाकई सन्त हैं तो मुझे कुरान शरीफ और उसके साथ मिठाई भी दें। जैसे ही आया तो हजरत ने कहा कि भाई मेरी परीक्षा लेने आए हो, यह लो कुरान शरीफ और मिठाई। वह बहुत लज्जित हुआ।

एक आदमी बड़ा बदचलन था, वह आपसे दीक्षा लेने आया और कहने

लगा कि मैं बड़ा बदचलन हूँ। आपने कहा तुमने मेरे सामने तो कोई गुनाह नहीं किया। वह बोला "हजरत मेरी मजाल क्या जो मैं आपके सामने गुनाह करूँ।" आपने दीक्षित कर लिया। फिर तो जब भी उस शख्स ने बुरे कर्म का इरादा किया अपने गुरु को सशरीर वहीं पाया, आखिर लज्जित होकर सच्ची तौबा की, और राहे रास्त पर आ गया।

एक बार किसी समारोह में खाना कम पड़ गया तो आपने वस्त्र देकर कहा कि इसे देग पर डाल दें व खाना निकालते रहें। सभी लोगों ने अच्छी तरह खाया फिर भी बच रहा व बाद में वितरित करना पड़ा।

आपके गुरु ने आपको अपने सामने अपने पद पर सुशोभित किया, पर आपने अपने गुरु साहब के नवासे को उस पर बिठा दिया और कहा मुझे तो अपने हजरत पीर (गुरु महाराज) की मुहब्बत ही काफी है।

यह सत्य है आपके जैसा विशेष कोई दूसरा साहबे-तरीक़त सिलसिले में नहीं आया पर यह भी सत्य है कि आपने अपने शिष्य हाजी खलीफा अहमद अली ख़ाँ साहब कायमगंजी को अपने से भी बढ़ा-चढ़ा बनाया और सब कुछ दे दिया। आपने सन् 1854 में महा समाधि ली। आपके वंशज एक हकीम साहब भी नसीराबाद गांव में रहते हैं।

समाधि-बड़े खेद का विषय है कि इतने महान संत व क़ुतुब जिनसे सारा आलम मुनव्वर हुआ की समाधि जीर्ण शीर्ण अवस्था में है और कच्ची है। शायद इन बुजुर्ग की यही इच्छा (मंशा) रही हो क्योंकि नक्शबंदिया सिलसिले की विशेषता गुप्त रहना है। हमारे बुजुर्ग गुमनामी पसंद थे। पर स्थान इतना तो होना ही चाहिए कि आने वाली पीढ़ियाँ कम से कम वहाँ पहुँच सकें व पहचान कर सकें।

आपकी समाधि को ढूंढने में हमें समय (वक्त) लगा। आपकी समाधि रायबरेली ज़िले में नसीराबाद क़स्बे में (जो जायस से 4-5 किलोमीटर है) थाने के पीछे (मंदिर के पास) सड़क पार करके, इदगाह में (जो खेत के रूप में है) बनी है। आपकी व आपके पुत्र हजरत हादी हसन की समाधि साथ-साथ हैं। दोनों मजार

कच्ची हैं बस दो-तीन फुट ऊंचा परकोटा खिंचा हुआ है व फारसी भाषा में एक पत्थर लगा है जो पहचान बताता है । आपकी समाधि पर जो आत्मिक आनंद मिलता है उसके बारे में आपके सुयोग्य शिष्य हजरत मौलवी अहमद अली खां साहब लिखते है "मैं जब भी गुरुदेव की समाधि पर गया, हजरत अपनी जीवित अवस्था की तरह मुझे अपनी विशेष दया-कृपा से फ़ैजयाब करते ।" फिर लिखा "दिले मन दानद व मन दानम व दानद दिले मन (मेरा दिल उस आनन्द को जानता है और मैं जानता हूँ और वह जानता है)" । सत्संगियों से निवेदन है कि वे भी वहां हाजिरी बजाएं और उस आनंद को लूटें ।

33 - हजरत जनाब मौलवी खलीफा अहमद अली ख़ाँ साहब (कायमगंज)

आप हजरत अबुल हसन साहब नसीराबादी के खास खलीफा व प्रतिरूप थे। आपके गुरुदेव ने मौलवी अहमद अली खां साहब को बताया कि तुम से एक आलम प्रकाशित (मुनव्वर) होगा और यह अम्र (आदेश) आपके संत शिरोमणि ('क़ुतुब इर्शाद') होने का प्रमाण है। यह भी बताया कि तुमसे नास्तिकों को, राह चलतों को, पापियों को अत्यधिक लाभ पहुंचेगा और वे कमामुल ईमान होंगे और कहा तुम को जो मिला वह जमाने में शायद किसी को मिला होगा। हजरत अहमद अली ख़ाँ साहब अरबी व फारसी के प्रकाण्ड विद्वान थे। आपने युवावस्था में ही कई गद्य व पद्य की पुस्तकों के साथ दो दीवान भी लिखे। आप "मजरूह आसी" उपनाम से कविता करते थे। एक साहब जो आपके गुरुदेव के पास जाया करते थे कायमगंज (रायपुर) के रहने वाले थे। अहमद अली खां साहब को जाप करते देखा तो कहा "अहमद अली अब बे बैअत (बिना दीक्षा) के कार्य नहीं चलेगा।" आप इसके लिए राजी नहीं थे। रात्रि को स्वप्न में गुरुदेव स्वयं पधारे और वही बात दोहराई। सो ये तत्काल नसीराबाद जाकर हाजिर हुए व दीक्षा ली। आप चार बार अपने गुरुदेव की हाजिरी में एक चिल्ला (चालीस दिन) रहे। अंत में गुरुदेव ने सभी इजाज़तें दीं व पूर्ण करके अपना प्रतिरूप बना लिया। फिर गुरुदेव बोले कि हमारा अन्त समय निकट आ गया है अब तुम्हें काम करना है। सुन कर शिष्य हजरत अहमद अली ख़ाँ साहब रोने लगे और अर्ज किया कि हजरत बन्दे को मुआफ फरमाइएगा। गुरुदेव ने कहा 'खुदा आसान करेगा' और आपके वास्ते दुआ की।

हजरत अहमद अली खां साहब की भी अपने गुरु के अनुरूप यह विशेषता थी कि आपकी संगति से बुराइयाँ तत्काल छूट जाती थीं और वह व्यक्ति धर्मानुरूप आचरण करने लग जाता था। आप ब्रह्म विद्या के अथाह समुद्र थे। हजरत अहमद अली खां साहब के सुपुत्र का देहावसान 15 वर्ष की उम्र में हुआ तो उनकी पत्नी बच्चे

की याद में रोती रहती थीं। तब हजरत ने अपने एक मित्र के बच्चे (जो

बाद में आपके खलीफा बने) को अपना बेटा मान लिया। पुत्र ने भी अपनी मां की ऐसी सेवा की कि कोई अपनी असली मां की क्या करता। पुत्र का शुभ नाम हजरत जनाब मौलवी अहमद

खां साहब था जिन्हें गुरुदेव ने ब्रह्मविद्या से मालामाल कर दिया, और अपना उत्तराधिकारी बनाया।

एक बार एक आलिम फाजिल (प्रकाण्ड विद्वान) हजरत अहमद अली खां साहब से मिलने आए। किसी प्रश्न के जवाब में हजरत के मुंह से कायमगंज की भाषा में निकल गया "मलूम नहीं" (मालूम नहीं)। वे विद्वान बड़े आश्चर्य से बोले जब आप जैसे प्रकाण्ड विद्वान 'मलूम नहीं' कहते हैं तो आम आदमी का क्या हाल होगा। हजरत अहमद अली खां साहब ने कहा "भाई मैं तो कुछ जानता नहीं हां मेरे पास एक लड़का आता है शायद वह तुम्हारे प्रश्नों का जवाब दे पाए।" फिर दूसरे दिन एक पुत्रवत् शिष्य (हजरत अब्दुल ग़नी खां साहब) को बुलाया और कहा तुम जाओ और उन विद्वान के पास जाकर उनके प्रश्नों के जवाब दो। पुत्र ने कहा मैं तो कुछ जानता नहीं मैं क्या जवाब दूंगा। आप बोले तुम सिर्फ हमारा ख्याल करना बाकी काम मैं करुंगा। आखिर में तुम भी एक प्रश्न (सवाल) उन विद्वान से पूछ लेना।

ये पुत्र उन विद्वान के पास पहुँचे और उन विद्वान के सभी प्रश्नों का कुशलता से उत्तर (जवाब) दिया। और अंत में एक छोटा सा प्रश्न उन विद्वान से पूछ लिया। वह आलिम फाजिल बगलें झाँकने लग गए। तब हजरत अब्दुल ग़नी खां साहब ने उस प्रश्न का भी विस्तार से उत्तर दिया। उनके रूप में गुरुदेव ही कार्य कर रहे थे। उन विद्वान ने इन पुत्र की बहुत प्रशंसा की और कहा जब तुम्हारा यह हाल है तो तुम्हारे पीर कितने ज्ञानी होंगे ? शिष्य जब लौट कर आए तो हजरत अहमद अली खां साहब ने बिना कुछ पूछे उन्हें तुरंत गले लगा लिया और कहा 'शाबाश'। बाकी हाल तो उन्हें मालूम था ही। ये हजरत अब्दुल ग़नी खां भी आपके खलीफा, उच्च कोटि के सन्त हुए और बहुत काम किया।

हजरत फ़ज़्ल अहमद खां साहब आपके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी बने व आध्यात्म जगत में सूर्य की भांति प्रकाशित हुए। आध्यात्म के प्याले, खास और

आम सभी को भर-भर कर पिलाए।

समाधि-हजरत अहमद अली खां साहब की समाधि कायम गंज (जिला फरुखाबाद, उत्तर प्रदेश) में कब्रिस्तान नन्दू खां (जाकिर हुसैन मार्ग) पर करीब 100 मीटर सड़क से दूर अंदर है। छत बनी हुई है व सफेद रंग किया हुआ है। आपने सन् 1889 की चार नवंबर को शरीर छोड़ा। आपकी समाधि पर मेरा करीबन हर वर्ष ही जाना होता है व नूर की वर्षा बारिश में सराबोर (फ़ैजयाब) होता हूँ। आपकी समाधि की हाजिरी एक पवित्र यात्रा (हज़) के बराबर है।

अभी कुछ वर्षों तक समाधि बहुत खराब हालत में थी। पर बाद में हजरत नवाब फ़ज़्ल अहमद खां साहब के पौत्र हजरत मंजूर अहमद ख़ाँ सा॰ के प्रयत्नों से कुछ समाधि की संभाल हुई। इसका वाकया भी विशेष है जिसे हजरत मंजूर अहमद ख़ाँ साहब ने इस तरह बताया कि जब समाधि की हालत बहुत खस्ता हो गई तो वे कुछ सीमेंट व इटों का इंतजाम करके एक कारीगर को लेकर समाधि पर पहुँचे कि मजार को कुछ ठीक ठाक कराया जाए। कारीगर काम में लग गया व आप पेड़ के नीचे बैठ कर सुस्ताने लगे। इतने में कारीगर हाँफता हुआ आया और बोला "हुजूर क्या यह किसी बुजुर्ग का मजार है ?" आप बोले "हाँ भाई बहुत बड़े बुजुर्ग थे-कुतुबे वक्त थे। क्यों क्या बात है ?" कारीगर बोला, जैसे ही मैंने करनी से कुछ मिट्टी-विट्टी साफ की समाधि में से एक तेज पर बड़ी साफ आवाज आई "मियां मुअज्जम (उस कारीगर का नाम मुअज्जम था), फकीर तो गुमनाम होते हैं।" पाठक गण ध्यान दें, यही कारण है हमारे बुजुर्गों के मजार उपेक्षित क्यों हैं ? क्योंकि हमारे बुजुर्ग ही नहीं चाहते कि शोहरत हो। वे गुमनाम ही रहना चाहते हैं। कारण कि गुप्त रहना व शांत भाव ही नक्शबंदिया सिलसिले की विशेषता (खासियत) है। नक्शबंदिया सिलसिले के सभी बुजुर्गों का यह मानना है कि "ईश्वर ने तुम्हें प्रगट करके स्वयं को गुप्त कर लिया है अब तुम्हारा कमाल यह है कि तुम स्वयं को गुप्त करके उस मालिक को प्रगट कर दो।"

फिर हजरत मंजूर अहमद खां साहब भी जिद पकड़ गए और मजार पर निवेदन (अर्ज) किया कि हम तो आपके बच्चे हैं व मजार इसलिए ठीक ठाक की जा

रही है कि आने वाली नस्लें आपके इस स्थान को पहचानें व अक़ीदत पेश कर सकें । फिर फतहा पढ़ा और हुक्म होने के बाद ही मजार को ठीक ठाक कराया जा सका ।

इसके कुछ वर्षों पहले तक इस समाधि के आसपास इतने काँटे-झाड़-झंकार जमा थे कि समाधि के पास तक पहुंचना कठिन था । उस समय एक बार हमारे श्रीमान चच्चा जी महाराज (श्रीमान महात्मा रघुबर दयाल साहब) ने वहाँ खड़े रहकर प्रार्थना की कि हम आपके बच्चे है हमें समाधि के पास तक भी आप नहीं आने देते ? हम पर दया कीजिये और हमें भी पास पहुँच कर सेवा में उपस्थित होने का अवसर प्रदान कीजिये ।

यह स्थान हम लोगों का तीर्थ है । हर वर्ष हो सके तो यहाँ जरूर जाना चाहिए । इससे बुजुर्गों का आशीर्वाद मिलता है ।

34 - हजरत जनाब मौलवी फ़ज़्ल अहमद खां साहब (रायपुर-कायमगंज)

हम सब लोग हजरत जनाब शाह फ़ज़्ल अहमद खां साहब रायपुरी के प्रति कृतज्ञ हैं कि उन्होंने अपनी असीम व उदार आध्यात्मिक चेतना के द्वारा नक्शबंदिया सिलसिले की अति गुहा व अनमोल आध्यात्मिक विद्या को मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य धर्म के लोगों को बिना धर्म परिवर्तन कराए फ़ैजयाब करने का अत्यन्त साहसिक कदम उठाया। यह एक क्रान्ति कारी घटना थी। इस महान् पाक हस्ती ने विश्व के सम्पूर्ण मानव समाज के लिए महान उपकार का कार्य किया। उन्होंने धर्म की ऐसी नूतन व सर्व ग्राही परिभाषा व संकल्पना की कि जिसके आधार पर धर्म को दो हिस्सों में शरीयत व रूहानियत में बांटा। शरीयत कर्मकाण्ड का स्वरूप निर्धारित है, पर रूहानियत (अध्यात्म) प्राप्त करने के लिए धर्म का कोई बंधन नहीं है। हजरत ने यह भी समझाया कि यह सूफी संतों की विद्या, प्राचीन हिंदू आर्य ऋषि मुनियों की विद्या ही है जो अब पुनः उन्हीं को वापस हो रही है।

आपके गुरुदेव ने एक बार आपको अपने गुरुदेव (श्रीमान् क़ुतुब साहब) का बतलाया हुआ यह रहस्य भी बतलाया कि "तुम्हारे पास एक दिन लड़का आयेगा उससे इस अध्यात्म का बहुत-बहुत प्रचार होगा, परन्तु मेरे पास तो ऐसा कोई लड़का नहीं आया संभवतः शायद उन्होंने तुम्हें मुझ में देखा होगा। अब तुम इस बात का ध्यान रखना और इस आज्ञा का पालन अक्षरशः करना।"

आप जिला फर्रूखाबाद में कायमगंज से चार मील दूर रायपुर गांव के निवासी थे। आपको आपके गुरुदेव ने अपना पुत्र बना। लिया था व गुरुदेव के साथ ही रहते थे। गुरु माता की अपने अंतिम समय तक आपके ही साथ रहीं और उनकी बहुत सेवा की। आप अपने गुरुदेव की सेवा में 22 वर्ष रहे उन्होंने ब्रह्मविद्या से मालामाल कर दिया। अंत समय में गुरुदेव ने भविष्यवाणी की कि तुम्हारे पास एक हिन्दू लड़का आएगा उसका खास ख्याल रखना। उस लड़के से ब्रह्म विद्या का प्रचार हिंदुओं में खूब होगा। ये लड़के स्वनामधन्य महात्मा रामचंद्र जी साहब फतेहगढ़ थे। आपने अपना खास खलीफा पूज्य महात्मा जी (महात्मा रामचंद्र जी

साहब) को बनाया व साथ ही पूर्ण आचार्य पदवी अपने छोटे गुरु भाई पूज्य मौलवी अब्दुल ग़नी खां साहब को प्रदान की।

आपका जन्म सन् 1857 में हुआ था। आपका जीवन करामातों से भरा है। सदाचार आपका चरम सीमा पर था। सब्र व संतोष की आप साक्षात मूर्ति थे। आपके गुरुदेव ने किसी और को खास खलीफा नहीं बनाया। कहा, तुम जैसा एक शेर हज़ारों से अच्छा है। आपकी आत्मिक धारा (तवज्जोह) हजरत ख़्वाजा बाकी बिल्ला साहब (रह०) की तवज्जोह से हूबहू मिलती हुई थी।

कोई आपसे धर्म परिवर्तन करा लेने के लिए कहता तो उन्हें बहुत बुरा लगता। कहते "अब तुम मेरे काम के नहीं रहे। मैं अपनी फकीरी पर धब्बा नहीं लगने दूंगा। तुम जिस धर्म में हो उसी में रहो और अध्यात्म प्राप्त (रूहानियत हासिल करो।"

आप न किसी से पैर छूआते थे न किसी से भेंट लेते थे बल्कि अपने शिष्यों के पैर दबाते। अकसर कई दिनों तक फाका उपवास रहता। फिर अगर कहीं से पैसे भी आते तो बांट देते। अभ्यास इतना करते कि एक बोतल चमेली का तेल कुछ दिन में ही सिर में जज़्ब हो जाता। एक बार आपने दवाखाना खोला व शीशियों में कुएँ का पानी भरा दिया। उन दवाओं को पीकर जो आया उसके असाध्य रोग ठीक हो गए। फिर जो कमाई होती उसका सिर्फ चालीसवाँ हिस्सा रख कद सब बांट देते। फिर कुछ दिन बाद शोहरत ज्यादा होने से, दवाखाना बंद कर दिया।

एक रईस के सुपुत्र आपके पास आते थे। कुछ दिनों बाद निवेदन किया मैं एक सी से शादी करना चाहता हूँ आप मुझे कोई ऐसा मंत्र बता दीजिए जिससे वह मुझसे शादी करने को तैयार हो जाए। उस समय आप चुप रह गए। बाद में एक दिन चांदनी रात थी। सत्संगी भाई बैठे हुए थे। व रईस के सुपुत्र भी बैठे थे। हजरत साहब बहुत साफ सफेद कपड़े पहने हुए थे। इत्र लगा हुआ था। चमेली बेला के फूल पास में रखे थे। अचानक उन सुपुत्र को संबोधित करके बोले "बेटे ! हमारी तरफ देखो, क्या वह औरत हम से भी ज्यादा खूबसूरत है ?" आप उस समय बड़े खूबसूरत दिखाई पड़ते थे। उन साहबज़ादे ने आपकी तरफ देखा तो देखते रह गए

मानो पत्थर की कोई मूर्ति हो। उस रोज से हालत बदल गई व स्त्री की मुहब्बत के बदले में गुरु महाराज की मुहब्बत ने घर कर लिया।

एक शाह साहब ने कुछ सिद्धियाँ हासिल कर ली थीं। एक बार हजरत साहब फर्रूखाबाद से कानपुर जा रहे थे। शाह साहब जब भी ट्रेन रुकती हर स्टेशन पर प्रकट हो जाते हुक्का पेश करते और हजरत साहब से बातें करते मानो बतला रहे हों कि मैं यह चमत्कार जानता हूँ। ऐसे ही तीन स्टेशन तक वे बराबर आते रहे। आखिर हुजूर महाराज ने कहा ?" शाह साहब यह क्या खेल दिखा रहे हो ? यह हरकत फ़क़ीरों को शोभा नहीं देती। अब आप अगले स्टेशन पर न आ सकेंगे।" अगले स्टेशन पर शाह साहब के दर्शन नहीं हुए उनकी वह सिद्धि हमेशा के लिये जाती रही।

आपकी करामातों का कहां तक वर्णन किया जाए। आपकी जिंदगी ही करामात और बरकत की जिंदगी थी। जो काम था वह करामात था। जहां जाते थे वहां बरकत फैल जाती थी।

आप एक नजर में शिष्यों को अध्यात्म की ऊंची से ऊंची अवस्थाओं में ले जाते थे। जब आपने अपने शिष्य महात्मा रामचंद्र जी महाराज (फतेहगढ़) को उत्तराधिकारी बनाया तो एक जलसा किया जिसमें हिंदू मुसलमान ईसाई, नानक पंथी कबीर पंथी आदि सभी बुलाए और कहा कि मैंने सारी उम्र में यह दरख़्त (पेड़) तैयार किया है। आप इस उत्तराधिकारिता की पुष्टि करें। फिर महात्मा जी को कहा कि इन सब साहेबान को ध्यान कराएँ। ऐसा कहा जाता है कि उस सभा में अजीब कैफियत थी जो फिर कभी देखने में नहीं आई। सभी वंश के बुजुर्ग उस सभा में बैठे नजर आते थे। सब जगह नूर ही नूर छाया हुआ था और अजीब कशिश व आनंद था। आँखों से आंसू जारी थे और अजीब हालत सोजो गुदाज़ (द्रवित होकर रोने) की थी। बाद में सभी ने कहा, "क्या नमूना तैयार किया है ! और इन्होंने क्या कमाल हासिल किया है ! आपका शिष्य ईश्वर में पूर्ण रूप से लय ही नहीं बल्कि इनकी सत पद में पूर्ण स्थिति भी है।"

जब आपकी उम्र 69 वर्ष की हो गई तो कहते थे मैं इस जिस्म की कैद से

आज़ाद होना चाहता हूँ उसके बाद मैं आप सब की ज्यादा मदद कर सकूंगा। आप कहते थे दुनियाँ में कोई ऐसा काम नहीं है जिसे हम हिम्मत करें और न हो। जब आपकी माताजी बहुत वृद्ध हो गई व कहने लगीं बेटा फर्रूखाबाद 25 मील दूर है व हमें खरीदारी को जाना पड़ता है बहुत समय लगता है तो आपने कोई मंत्र माताजी को बता दिया तो वे आधे घंटे में फर्रूखाबाद से खरीदारी करके वापस आ जाया करती थीं वे बहुओं आदि के लिए चूड़ियाँ वगैरह खरीद लाती थीं।

आपका कश्फ (त्रिकालदर्शिता) विशेष थी। आप अपने शिष्यों के घर जाते तो बता देते कि वे शिष्य कहीं पर, कितने बजे बैठ कर क्या पूजा करते हैं।

सन् 1908 में जब आपका अंत समय आया तो आप बराबर बताते जाते कि "अब हमारी आत्मा पैर से निकल गई, अब जिस्म के निचले हिस्से से अब हाथों से "फिर फ़रमाया" अब सभी मौजूद लोग आँख बंद करके परमात्मा का ध्यान करो और हमारी आख़िरत (मोक्ष) के वास्ते दुआ करो।" सब परमात्मा का ध्यान करने लगे तो देखा शरीर मौजूद है व आत्मा परमपिता परमात्मा की गोद में वापस लय हो चुकी है।

समाधि

आपकी समाधि कायमगंज से 5 मील दूर रायपुर गांव में ईदगाह के पास है। आपके पौत्र हजरत मंजूर अहमद खां साहब ने बड़ी लगन से समाधि पर कमरा बना दिया है। यहाँ गुड फ्राइडे के तीसरे दिन बाद भंडारा होता है। यह ऐसा स्थान है जहाँ बैठने से जन्मों-जन्मों के पाप धुल जाते हैं व अपूर्व कृपा की अनुभूति होती है। यहाँ मेरा हर वर्ष जाना होता है।

34A - हजरत जनाब मौलवी अब्दुल ग़नी खां साहब (भोगाँव)

आपका जन्म 7 फरवरी सन् 1867 को हुआ । आप हजरत मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां सा० रह के गुरु भाई तो थे ही पर आपकी पूर्णता इन हजरत के द्वारा ही हुई। आप बेहद कुशाग्र बुद्धिमान थे। हर परीक्षा में प्रथम आते थे। आप पूरे उत्तर प्रदेश में नार्मल की परीक्षा में प्रथम आए तो आप सीधे हेड मास्टर बना दिए गए। हजरत जनाब मौलाना अहमद अली ख़ाँ साहब आपको पुत्रवत् प्यार करते थे। आप वहीं उनके पास रहते थे। आप डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल पद तक पहुँचे। आप अपने समय के महान् सन्तों में गिने जाते थे । आपकी मन मोहिनी सूरत देखकर हर व्यक्ति मोहित हो जाता था। आवाज भी आपकी बड़ी मधुर थी।

एक बार एक हिंदू अनुगामी ने आपसे चित्र के लिए प्रार्थना की तो आपका उत्तर इस प्रकार था । 'मेरा फोटो ? इंशा अल्लाह मेरे जनाज़े का भी फोटो नहीं लिया जा सकेगा - मेरा फोटो कौन ले सकता है ?' और ऐसा ही हुआ।

जब आप मिडिल की परीक्षा में जाने लगे तो हजरत मौलाना अहमद अली खां साहब से निवेदन किया कि मैंने कुछ ठीक से पढ़ा नहीं है। उत्तर मिला - "मैंने तो पढ़ा है, चिंता क्यों करते हो ?" आपको उस परीक्षा में उत्तर प्रदेश भर के विद्यार्थियों में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ।

आपके जन्म के पहले ही एक नुजूमी (ज्योतिषी) ने आपका तमाम हुलिया तथा मुखमंडल की बनावट बता दी थी और यह भी कहा था कि आप असाधारण प्रतिभा वाले (साहबे कमाल) होंगे।

आपके प्रियजन यदि कोई इच्छा मन में लेकर आपके पास जाते तो आप फ़रमाते "इंशाअल्लाह जो चाहते हो, वही होगा" और वैसा ही हो जाता!

आपके आत्मविश्वास व हिम्मत का यह हाल था कि आप किसी कार्य को

कठिन नहीं समझते थे। अपने गुरुदेव में आपका विश्वास इतना दृढ़ व अडिग था कि जिस कार्य को जैसा चाहते वह वैसा ही होता। भक्त का भगवान के यहाँ ऐसा ही आदर होता है। आपका जलाल (तेज) अद्भुत था। किसी की हिम्मत नहीं होती थी कि किसी प्रकार की असभ्यता (गुस्ताखी) आपके सनमुख कर सके। जो भी आपके सामने जाता उस तेज से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। आपकी सुंदर सुडौल बड़ी-बड़ी आँखें जिधर पड़ती, प्रकाश ही प्रकाश बिखेर देती। किसी को प्यार की दृष्टि से देख लिया तो वह निहाल हो गया।

हमने देखा है कि गुरु घराने में, अर्थात् हमारे श्रीमान लाला जी महाराज श्रीमान चच्चाजी महाराज और श्रीमान छोटे चच्चा जी महाराज (अजमेर-जयपुर वाले) द्वारा आपको कितना आदर दिया जाता था। हमने इन बुजुर्गों को आपके सामने हाथ बाँधे खड़े भी देखा है।

आपके प्रथम दर्शन मैंने सन् 1926 में किए। आपके प्रति मुझे बहुत आकर्षण हुआ। आपको भी मेरी ओर ऐसा प्रेम भाव हुआ कि जब कभी दर्शन को जाता तो चिपटा लेते और मैं ऐसा गद्गद हो जाता कि मुंह से शब्द नहीं निकलते। आपकी आध्यात्मिक शिक्षा का भी वही तरीका रहा कि बातों ही बातों में यदि किसी की आँख बंद हुई तो गहरा गोता लग गया। मुझे एक बार भोगाँव पहुंचने का आदेश दिया। वहाँ एक टूटी हुई मस्जिद में ध्यान कराया। आपने इशारे से हृदय चक्र के पाँचों स्थान बताएं और ध्यान में बिठा कर उन पाँचों पर ॐ नाम बोलता हुआ मुझे प्रत्यक्ष सुनवा दिया। बोले - ये पाँचों चक्र तुम्हारे खुल गए हैं। अभ्यास करते रहना, सब ठीक हो जाएगा। मेरी धर्मपत्नी को देखने आप एक बार मेरे घर पधारे वहाँ मेरी धर्मपत्नी को आपने कुछ अस्वस्थ देखकर मुझे एक मंत्र बताया कि, तकलीफ में इसे पिला दो सब ठीक हो जाएगा। यह भी आज्ञा दी कि जिसको ठीक समझो यह मंत्र बेधड़क दे दिया करो। खुदा के फ़ज़्ल से फायदा होगा। इस मंत्र से मेरी धर्मपत्नी शीघ्र ही ठीक हो गईं। फिर मैंने कितने ही असाध्य बीमारों को इससे अच्छा किया।

एक बार आपकी पोस्टिंग शिकोहाबाद में हेडमास्टर के रूप में हुई। जिस

मकान में आप रहने गए वहाँ एक भूत रहता था। वह कष्ट भी देता था। आप दालान में बिस्तर पर लेटे तो सहन में एक सेंजने का पेड़ था वह हिला। फिर थोड़ी देर बाद जोर से हिला। "अच्छा आप हैं?" कहते हुए उठे। खूंटी से हंटर उतार कर उस पेड़ को मारना शुरू किया। मंत्र पढ़ते और मारते जाते थे। उस पेड़ की शाख़ें जमीन से लग-लग जाती पर जब तक आप थक नहीं गए उसे मारते रहे। फिर आकर अपने बिस्तर पर लेट गए। आसेव मार से बेहाल हो चुका था। आकर पैर दबाने लगा। आपने उससे कहा "आइन्दा शरारत देखी तो जिंदा जला दूंगा।" फिर वह आसेव जब तक आप वहाँ रहे सेवा करता रहा। तबादला होते समय उस की सेवा से प्रसन्न होकर उसे उसकी योनि से छुड़ा दिया। संत ऐसे ही दयालु होते हैं। शायद आप उसी पिशाच के सौभाग्य से उस मकान में रहने गए थे।

जो भी आपकी शरण में आया आपने उसे अध्यात्म से ओत-प्रोत कर दिया। हजरत फ़ज़्ल अहमद खां साहब के द्वारा आपकी अध्यात्म शिक्षा की पूर्ति हुई और परम संत सद्गुरु की पदवी आपको उन्हीं के द्वारा दी गई।

महात्मा श्री बृजमोहनलाल श्री जगमोहन नारायण, श्री राधामोहनलाल, श्री ज्योतिन्द्रमोहन व श्री नरेन्द्रमोहन को हुजूर मौलवी अब्दुल ग़नी साहब द्वारा बैअत कर दीक्षित किया गया।

अपने शिष्यों तथा सारे सत्संग परिवार के महानुभावों को आप सन् 1952 तक सराबोर (फ़ैजयाब) करते रहे। अंत में आप ता॰ 30 मार्च, 1952 को अपने प्रीतम में समा गए।

समाधि

आपकी समाधि ग्राम भोगाँव (जिला मैनपुरी) में ग्राम से बाहर खेतों में, बाग़ीचे में एकान्त तथा सुंदर स्थान पर बनी हुई है। महात्मा नरेन्द्रमोहन जी ने बताया कि एक बार मौलवी साहब ने इच्छा जाहिर की कि वे अपनी कब्र डाक्टर कृष्ण स्वरूप जी साहब के बाग मुकाम भोगाँव में बनाना चाहते हैं। डाक्टर साहब ने उसी समय वह बाग जहाँ उनकी भव्य समाधि अब स्थित है, उन्हें नज़र कर दिया।

हर वर्ष यहाँ मेरा जाना होता है। यहाँ बैठते ही अध्यात्म की धारा ऐसी प्रवाहित होती है कि थोड़ी देर में सराबोर हो जाते हैं। तन बदन का होश नहीं रहता। यहाँ सभी सत्संगियों को जब भी अवसर मौका मिले जाना चाहिए व कृपा धार से लाभान्वित होना चाहिए। आपकी समाधि मनुष्य मात्र को उस भागीरथी में स्नान करने का ऐसा जरिया है जिसे किसी भी कीमत पर हासिल करने का प्रयत्न करना चाहिए।

35 - हजरत जनाब मुंशी रामचन्द्र साहब (महात्मा जी महाराज) (फतेहगढ़)

भारत भूमि सदा से ही धर्म स्थली रही है। यहाँ सदा से ही सन्त महात्मा ओर अवतार होते रहे हैं। जब जैसा समय आया उसी आवश्यकतानुसार दिव्य आत्मायें यहाँ अवतरित होती रहीं। पतित पावनी गंगा के तट पर उत्तर प्रदेश में एक नगर फतेहगढ़ (फर्रूखाबाद) आबाद है यहीं पर यह दिव्य महान् आत्मा अवतरित हुई। अपना काम करके पुनः दिव्य लोक में विलीन हो गई। इस परम कल्याणकारी प्रातः स्मरणीय महान आत्मा का नाम महात्मा श्री रामचन्द्र (उर्फ लालाजी) था।

सम्राट अक़बर के समय में एक कायस्थ कुल दीपक श्रीमान वृन्दावनदास साहब (अज़ान वाहु) थे। इनकी बुद्धिमत्ता और बहादुरी से प्रसन्न होकर सम्राट अक़बर ने आपको 555 गाँव की जागीर व शाही ख़िलअत तथा चौधरी का खिताब दिया था। आपने एक कस्बा भूमिग्राम नाम का जिला मैनपुरी में बसाया। इसी का बाद में भोगाँव नाम पड़ गया। इसी वंश में चौधरी हरबख्श राय साहब हुए। सन् 1857 ई० के स्वतन्त्रता संग्राम में इस क़स्बे को लूट लिया गया और जानमाल का खतरा हो गया। चौधरी साहब अपनी जन्मभूमि छोड़कर फर्रूखाबाद आकर बस गये। यहाँ आप सुपरिन्टेडेन्ट चुंगी के पद पर नियुक्त हो गए। आपकी सन्तानें जाती रहीं। उन्हीं दिनों किन्हीं अवधूत सन्त का फर्रूखाबाद में आना हुआ। एक दिन आपके द्वार पर आकर खाना मांगा। पूज्या दादी जी ने पूरी मिठाई पेश की। वह बोले हमारी इच्छा मछली खाने की है। दूसरे घर से ही मछली लाकर आपको परोसी (पेश की) गई। खा कर बहुत प्रसन्न हुए नौकरानी से बोले क्या चाहती है। उसने कहा कि मालिक का दिया सब कुछ है परन्तु बहू जी की गोद खाली है। इस पर उन्होंने ऊपर को हाथ उठा कर 'अल्लाह हो अक़बर' कहा फिर “एक” “दो” कह कर चल दिए। उन्हीं के आशीर्वाद स्वरूप 4 फरवरी सर 1873 ई० को बसन्त के शुभ दिन जो सन्तों का महान् मुबारक दिन माना जाता है, परम पूज्य महात्मा जी का जन्म हुआ। और 17 अक्टूबर सन् 1875 (करवा चौथ कार्तिक वदी 3/4 सं० 1932 वि) को उनके लघु भ्राता महात्मा मुंशी रघुबर दयाल साहब (उर्फ चच्चाजी

महाराज) पैदा हुए।

सात वर्ष की आयु तक आपका लालन पालन बड़े ठाट-बाट और आराम से आपकी पूज्या माताजी द्वारा हुआ। नौकर नौकरानियों की कमी नहीं थी। हर ठाठ मौजूद था। जब पूज्य महात्मा जी सात वर्ष के थे आपकी माताजी ने इस नश्वर जगत को छोड़ दिया। इसके बाद एक मुसलमान ख़ातून (सेविका) ने आपका लालन-पालन बड़े प्यार से किया। आपकी माता जी नित्य रामायण पढ़ा करती थीं। आप दोनों बड़े ध्यान (गौर) से उनके पास बैठ कर सुनते रहते थे। आपको गाने का शौक था सुरीला कण्ठ आपने अपनी पूज्या माताजी से पाया था। आपके गाने की विशेषता यह थी कि जैसा भी गाना आप किसी से सुन लेते थे ठीक हूबहू वैसा ही गाना गा देते थे। बचपन में आपने एक मौलवी साहब से उर्दू फारसी की शिक्षा प्राप्त की। आपने उनसे कविता करना भी सीखा। बाद में मिशन स्कूल से अँग्रेज़ी मिडिल परीक्षा पास कर ली। कुछ दिन बाद आप दोनों भ्राताओं की शादी कर दी गई। शादी के थोड़े दिन बाद आपके पिता जी का देहान्त हो गया और आपके बड़े चचेरे भाई श्री राम स्वरूप जी (डा॰ कृष्ण स्वरूप जी के अग्रज), जो जमींदार व घर का काम संभालते थे, उनका भी देहांत हो गया। उन्हीं दिनों राजा मैनपुरी जिनके साथ इनकी बहुत बड़ी जायदाद का मुकदमा चल रहा था उसमें राजा मुक़दमे में जीत गये। बहुत बड़ी जायदाद हाथ से निकल गई। मुक़दमे के खर्च में सारा मकान जेवर इत्यादि भी बिक गये। घर की दशा दयनीय (खस्ता) हो गई। लाचार आपको कलक्टरी में 10 (दस) रुपये मासिक की नौकरी करनी पड़ी। इसी से सारा घर का निर्वाह होता रहा।

आपकी ब्रह्म विद्या का आरम्भ (शुरूआत) आपकी पवित्र माता जी की गोद में ही हो गया था। होश सम्हालने पर उन्होंने आपको रामायण पढ़ना सिखा दिया था। बड़े होने पर आप प्रायः स्वामी ब्रह्मानन्द जी के पास जाया करते थे और उनके उपदेश सुना करते थे। स्वामी जी एक उच्च-कोटि के महात्मा थे। उस समय उनकी उम्र लगभग 150 वर्ष थी। आपके रहने का मकान छोटा होने के कारण आपने पास ही में एक कोठरी किराये पर ले ली थी। इस कोठरी के पास दूसरी कोठरी में एक मुसलमान सन्त मौलवी फ़ज़्ल अहमद ख़ाँ साहब रायपुरी हुजूर

महाराज रहा करते थे जिनका परिचय (जिक्र) स्वामी जी प्रायः क़ुतुब फर्रूखाबाद कह कर किया करते थे। पूज्य महात्मा जी इन्हीं मौलवी साहब से अपनी पढ़ाई की कठिनाई भी हल कर लिया करते थे मगर यह नहीं जानते थे कि यही वे सन्त शिरोमणि हैं जिन्हें स्वामी जी प्रायः बताया करते हैं। नौकरी मिलने के कुछ समय बाद एक दिन महात्माजी को कचहरी फतेहगढ़ से लौटने में देर हो गई। रात अंधेरी थी बादल गरज के साथ बरस रहे थे बिजली चमक रही थी। जाड़े की कड़कती सर्दी में आप बिल्कुल भीग गये थे। सर्दी से शरीर काँप रहा था। जिस समय आप अपनी कोठरी में जा रहे थे आपकी दयनीय दशा पर दूसरी कोठरी में उपरोक्त मुसलमान सूफी सन्त रहते थे उनकी कृपा दृष्टि आपके ऊपर पड़ी। उन्हें बड़ी दया आई, कहने लगे "इस वर्षा भरी तूफानी रात में इस वक्त आना।" महात्मा जी को इन शब्दों में बड़ा भारी प्रेम ओर आकर्षण का अनुभव हुआ। आपने बड़ी नम्रता से आदाब पेश किया। हुजूर महाराज ने दुआ दी "अल्लाह अपना रहम करे।" और बोले "बेटा भीगे कपड़े बदल कर हमारे पास आना। फिर हाथ-पैर आग से सेक कर घर जाना।" महात्मा जी ने ऐसा ही किया। हुजूर महाराज ने मिट्टी की अंगीठी में आग सुलगा रखी थी। महात्मा जी ने सलाम पेश किया हुजूर महाराज ने आँख उठा कर देखा आँख से आँख का मिलना था महात्मा जी के शरीर में चोटी से एड़ी तक बिजली दौड़ गई। तन-बदन का होश जाता रहा ऐसा मालूम होता था कि दो आत्मायें मिलकर एक हो गई हों। हुजूर महाराज ने कृपा पूर्वक आपको अपने बिस्तर पर लिटा दिया और रज़ाई उढ़ा दी।

महात्मा जी को अजीब आनन्द का अनुभव हुआ। अजीब हालत मस्ती की थी। सारा शरीर हल्का सा महसूस होता था और प्रकाश से दैदीप्यमान था। वर्षा बन्द होने पर आज्ञा लेकर घर चले गये। चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखता था, रोम-रोम से ओम् का शब्द जारी था। ऐसा मालूम होता था जैसे आपकी जगह हुजूर महाराज ने ले ली हो। जब आप घर पहुँचे खाना खाने को तबियत नहीं हो रही थी बगैर खाना खाये सो गये। रात को स्वप्न में आपको सन्तों का बहुत बड़ा समूह दिखाई दिया उसमें स्वयं को भी देखा। फिर एक दिव्य सिंहासन ऊपर से उतरता आया। उस पर एक तेजस्वी महापुरुष बैठे थे। सब उन्हें देख कर खड़े हो गए हुजूर महाराज ने आपको उनकी सेवा में पेश किया। उन्होंने बड़े प्रेम से आपको देख कर

कहा कि इनका झुकाव शुरू से परमात्मा की ओर है।" सुबह यह स्वप्न आपने हुजूर महाराज को सुनाया। उन्होंने आँखें बन्द कर ली ओर ध्यान मग्न हो गए। फिर बोले यह स्वप्न नहीं सत्य है। तुम धन्य हो। तुम्हारी हस्ती जन्म से परमात्मा की ओर झुकी हुई है। तुम्हें वंश के महापुरुषों ने अपनाया है तुम्हारा जन्म भूले-भटकों को सन्मार्ग पर लगाने के लिए ही है। ऐसी आत्मायें बहुत दिन बाद आती हैं। तुम्हारे ऊपर मैं गुप्त रूप से ध्यान (तवज्जोह) देता रहता था। जल्दी ही तुम्हें फ़नाफ़िल शेख और फ़नाफ़िल मुरीद (लय अवस्था) का दर्जा प्राप्त होगा।

आप बराबर हुजूर महाराज (मौलवी फ़ज़्ल अहमद खां साहब र०) से मिलते रहते थे और फ़ैजयाब होते रहते थे। 23 जनवरी, 1896 ई० को हुजूर महाराज ने आपको उपदेश देकर अपनी शरण में ले लिया फिर बराबर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपनी सोहबत से लाभान्वित (फ़ैजयाब) करते रहे। 11-10-1896 को आचार्य पदवी अर्थात (इजाजत कुल्ली) प्रदान कर दी और कहा कि मुझसे मेरे गुरु महाराज ने कहा था कि इस विद्या का प्रचार संसार के भूले-भटके लोगों के लिए करना मगर मैं इस काम को अधिक न कर सका। अब तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम इस काम को यथाशक्ति पूरा करना। यदि इसमें कमी की तो आक़बत में तुम्हारा पल्ला पकड़ुँगा। पूज्य महात्मा जी ने अक्षरशः अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन किया और अन्त समय तक एक बहादुर सिपाही की भाँति इस ब्रह्म विद्या का प्रचार करते रहे।

एक बार पूज्य महात्मा जी अपने गुरुदेव हुजूर महाराज के साथ टहलने गये। शाम का समय था। महात्मा जी अपने घर की कठिनाईयाँ हुजूर महाराज से निवेदन करते जा रहे थे। दोनों महापुरुष एक पुलिया पर बैठ गये। अचानक हुजूर महाराज भक्ति के आवेश में आ गये। हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। बड़े प्रेम से अपना सीधा हाथ महात्मा जी के कन्धे पर रख दिया और बोले "भाई बड़े भाग्यशाली हो परम पिता परमात्मा के प्यारे हो, तुमने बहुत सस्ते दामों पर यह सबसे बड़ी नियामत प्राप्त की। जिसका कोई मूल्य नहीं" इसके बाद कहा अपने चारों ओर देखो। महात्मा जी कहा करते थे कि एक अजीब दृश्य सामने था। हर ओर प्रकाश ही प्रकाश था। जिसमें एक अजीब आनन्द और आकर्षण था जो वर्णन

में नहीं आ सकता। सारी सृष्टि, घर दीवार जीव जन्तु सारे प्राणी उस प्रकाश में नाचते हुए दिख रहे थे। अजीब मस्ती सब पर छाई हुई थी। ऐसा मालूम होता था कि वह प्रकाश ही सब की जान और जीवन है और यही सब का लक्ष्य भी है। महात्मा जी ने सारी हालत हुजूर महाराज से वर्णन कर दी। उन्होंने कहा "शुक्र है रास्ता गलत साबित नहीं हुआ। यही तुम्हारा असल है और यही लक्ष्य है। इसमें ही अपने को गुम (लय) कर दो। मैं अब तुम्हारे पीठ पीछे हूँ सामने आना गुस्ताखी है।" महात्मा जी कहा करते थे कि जब मैं सैर के लिए जा रहा था दुनियाँ मेरे साथ थी और जब मैं वापस हुआ तो दुनियाँ सदा के लिए छूट चुकी थी। संसारी चिंतायें सदा के लिए छूट गई और उसकी जगह ईश्वर प्रेम ने ले ली।

हुजूर महाराज ने महात्मा जी को आचार्य पदवी देते समय एक जलसा (भण्डारा) किया उसमें सभी सम्प्रदायों के महापुरुष पधारे थे। हिन्दू, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान, नानक पंथी, कबीर पंथी, जैन, बौद्ध इत्यादि। सबके सामने महात्मा जी को पेश किया और बोले कि सारी उम्र में मैंने यह वृक्ष तैयार किया है आप साहेबान इसकी शिक्षा की पूर्णता की पुष्टि कर दें या किसी प्रकार के सुधार का प्रस्ताव चाहें तो कर सकते हैं। सब लोग ध्यान में बैठ गये। हुजूर महाराज महात्मा जी से बोले कि "बेटे पुत्तूलाल ! इन सब साहबान को तवज्जोह दो और जो भी सवाल करें उसका उत्तर दो। परमात्मा तुम्हें कामयाबी दे।" महात्मा जी ने तवज्जोह देना आरम्भ किया। पहले तो एक आनन्द महसूस होने लगा फिर धीरे-धीरे सब लोग विचार शून्य हो गये। अंत में सिवाय परमात्मा की याद के कोई भी विचार शेष न रहा। सभी वंश के महापुरुष जलसे में बैठे दिखाई देते थे। धीरे-धीरे प्रकाश दिखाई देने लगा फिर केवल प्रकाश ही प्रकाश रह गया और सब चीजें नजर से ओझल हो गई-न कहीं जमीन न आसमान एक नूर था जो सब की जान था और उसमें एक अजीब आकर्षण और प्रेम था। सब उसमें मस्त थे। एक सुहावनी नाम की गूँज सुनाई देती थी। सब की तबियत बे-करार थी। उस प्रकाश में जी चाहता था कि शरीर टूट कर आत्मा उस नूर में समा जाये। आँखों से आँसू जारी थे। सब उस नूर के प्रेम में द्रवित हो रहे थे। थोड़ी देर में हालत बदली प्रकाश धीरे-धीरे नजर से ओझल होने लगा। होश भी था और बेहोशी भी थी। जो हालत उस समय थी वह वर्णन से बाहर थी। हुजूर महाराज ने फ़रमाया "बस अब बन्द

करो।" धीरे-धीरे सब ने आँखें खोल दीं। सब एक मुँह से बोले कि "कमाल हासिल किया है और सत-पद तक रसाई ही नहीं उसमें पूर्ण लय अवस्था भी प्राप्त कर ली है।" उन महापुरुषों में से एक महापुरुष ने प्रश्न किया कि शुक्र किसे कहते हैं ? महात्मा जी ने उत्तर दिया कि परमात्मा की देन का उचित प्रयोग धर्म-शास्त्र के अनुसार करना ही शुक्र है। सब ने एक मुँह से महात्मा जी की पूर्णता का समर्थन किया। जलसा समाप्त हो गया।

महात्मा जी मँझले कद के थे। रंग गेहुआँ और मूर्ति मनमोहक थी। बाल बहुत मुलायम थे। आगे का एक दाँत कुछ बड़ा था। मूँछ दाढ़ी सुन्दर छोटी-सी थी। कभी-कभी प्रेम के आवेश में बाल खड़े हो जाया करते थे। भौहें कमानीदार सुन्दर थी शरीर बीच का था न बड़ा न छोटा न दुबला न मोटा हाथ पैर कोमल थे। आप सदा कम कीमत के वस्त्र पहनते थे। कुर्ता पजामा साधारणतया पहनते थे। कभी-कभी धोती भी पहनते थे। घुटनों तक का बन्द गले का कोट पहनते थे। बड़ी बाढ़ की टोपी पहनते थे। जाड़ों में शाल ओढ़ लेते थे।

महात्मा जी सूर्योदय से पहले हाथ मुँह धो कर शौच स्नानादि से निवृत्त फारिग होकर साफ कपड़े पहन कर अपना अभ्यास सन्ध्या करते फिर भाइयों को शिक्षा देते। दिन में दफ्तर में रहते और शाम को नौकरी से वापस आने पर जलपान करके लोगों को तालीम देते। लगभग दस बजे रात को विश्राम करने चले जाते। अपना घर का सामान स्वयं ही बाजार से उठा कर ले आते थे। लघु शंका के बाद शुद्धि के लिये जल का प्रयोग करते थे। भोजन आपका साधारण ही होता था। आमतौर पर एक दाल या सब्जी तथा साथ में चटनी या कोई अचार होता था। घर में मांस मदिरा का सेवन बिल्कुल नहीं होता था। कचौरी और अरबी (घुइयाँ) का साग पसन्द था। भेंट में रुपया कभी स्वीकार नहीं करते थे। शादी ब्याह तथा भण्डारे में स्वीकार कर लेते थे। स्वभाव बहुत ही कोमल हृदय का पाया था। दूसरों का दुख देखकर रो पड़ते थे। अपने सिद्धान्त पर हिमालय की भाँति अटल थे। व्यर्थ की बातें कभी नहीं करते थे। यदि कोई बात पूछने वाले की समझ के बाहर की होती तो चुप हो जाते थे। जब उसकी वह दशा होती थी तब उसे समझा देते थे। नजर नीची रखकर चलते थे। जोर से कभी भी नहीं हँसते थे, मुस्करा देते थे। आप

दीनता की मूर्ति थे। किसी का दिल दुखाने के विरुद्ध थे। जो चीज पसन्द न होती तो भी दूसरे का दिल न दुखे काम में ले लेते थे। दूसरों की भलाई के लिए प्रार्थना (दुआ) भी करते थे। आवश्यक्तायें कम करने के पक्षपाती थे। कहते थे कि यदि घर में एक चीज मौजूद है तो दूसरी की क्या ज़रूरत है ? उनका उसूल था कि खूब रुपया पैदा करो और जरूरत मंदों और विधवाओं की मदद करो। पर-स्त्रियों के संग के लिए सदा मना किया करते थे। कहते थे कि मन पर कभी भरोसा मत करो। दिखावा उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं था। जो दिल में हो वही बोलना पसन्द करते थे। कभी किसी की बुराई नहीं करते थे। कोई खिलाफ बात होती तो चुप हो जाते थे। बड़ों का आदर और छोटों को प्यार करते थे। किसी भी प्रकार का नशा कभी प्रयोग नहीं करते थे। ताश, चौसर आदि से घृणा थी। प्रारम्भ में संगीत का बड़ा शौक था। परन्तु शरीर छोड़ने से दो साल पहले से सब छोड़ दिया था। विधवा विवाह के पक्षपाती थे। वे चाहते थे कि सत्संगियों में यदि आपस में शादी हो तो बहुत अच्छा है। गुरु शब्द सुनना नापसन्द था। सत्संगियों को कभी-कभी गंगा स्नान कराने अथवा बच्चों को मेला दिखाने भी ले जाते थे। नौकरों से घर का जैसा व्यवहार करते थे। कहते थे कि जो काम स्वयं नहीं कर सकते उसे नौकर से कराना चाहिए। किसी से कोई वायदा नहीं करते थे। यदि कर दिया तो भरसक पूरा करते थे। ब्याह शादी में दिखावे के लिए धन व्यय करना पसन्द नहीं करते थे।

हुजूर महाराज के अन्तर्ध्यान होने के बाद कुछ दिन महात्मा जी बड़े उदास रहा करते थे। कभी-कभी जनाब अब्दुल ग़नी ख़ाँ साहब के पास चले जाया करते थे। आरम्भ में जो भाई तालीम के लिए आते थे उन्हें जनाब मौलवी साहब से ही दीक्षा दिलाते थे। बाद में उनके समझाने पर इस कार्य को स्वयं करने लगे थे। आरम्भ में कुछ विद्यार्थी आपके पास आए जो बड़े उद्दण्ड थे वे आपकी संगति के प्रभाव से सच्चरित्र बन गए। जो भी आपके पास थोड़ी देर बैठा बिना प्रभाव के न रह सका। आप किसी भी आदमी को देखते ही उसके जीवन प्रवाह को जान जाया करते थे। जिसकी जैसी स्थिति होती थी उसी प्रकार शिक्षा दिया करते थे। जो भी सज्जन आपके प्रेम पात्र बने अपने जीवन में ही निहाल हो गये।

दर्शन

सन् 1925 में मैं सबसे पहले श्रीमान चच्चा जी महाराज (परम सन्त महात्मा रघुबर दयाल जी महाराज, जो परम सन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज के छोटे भाई थे) के दरबार में पहुँचा। वे उन दिनों कानपुर नगर में आकर बसे थे। मैं भी उसी वर्ष कानपुर में ही (कॉलेज) शिक्षा के लिए गया था। मुझे आपकी सेवा में रहने का अवसर अधिक मिला। मेरे दीक्षा गुरु तो परम पूज्य श्रीमान लाला जी महाराज (महात्मा रामचन्द्र जी) ही हैं, जिन्होनें कृपा करके मार्च, 1928 में मुझे अपनाया परन्तु आपकी सेवा में मुझे रहने का अवसर कम मिला। इस थोड़े सम्पर्क में ही मुझे आपके बारे में जो जानकारी हुई और मेरे ऊपर आपकी दया और कृपा की जो वर्षा हुई उसके संस्मरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सन्तमत और धर्म

जैसा बताया जा चुका है श्रीमान लाला जी महाराज के गुरुदेव (हुजूर महाराज जनाब मौलवी फ़ज़्ल अहमद खां साहब) एक उच्च कोटि के सूफी सन्त थे। जब हुजूर महाराज ने पूर्ण सन्त सद्गुरु के रूप में आपकी सारी पूर्ति करके आपको प्रभु के नाम का प्रचार करने की आज्ञा प्रदान का तो हुजूर महाराज के पास आने वाले अन्य पुराने मुसलमान अभ्यासियों को अच्छा नहीं लगा। उन लोगों में जो मुखिया थे उन्होंने श्रीमान् लालाजी महाराज से कहा कि आप इस्लाम कबूल कर लीजिए वरना यह विद्या आपके पास नहीं रहेगी। आपने हुजूर महाराज की सेवा में ये सब बात निवेदन कर दी और यह भी कहा कि "मैं तो सब तरह आपका हो चुका हूँ यदि धर्म परिवर्तन की आज्ञा हो तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ?"

हुजूर महाराज इस बात पर अप्रसन्न हो गए। उन्होंने उन मुसलमान मुखिया को बुलाकर आज्ञा दी कि "मैंने तुम्हें इस गुस्ताखी के लिए अपने सिलसिले (आत्मिक कुटुम्ब) से निकाल दिया। चले जाओ और आइन्दा कभी मुझे मुँह न दिखाना।"

हुजूर महाराज का कहना था कि फ़क़ीरों की कोई जाति नहीं होती। वे तो खुदा की जात को ही अपनी जात मानते हैं। इसमें कोई हिन्दू मुसलमान का फर्क नहीं है। मगर क्योंकि यह गृहस्थों की विद्या है, इसलिए जिस जाति कुल में जन्म हुआ है उसकी मर्यादा निभानी पड़ेगी। हमारे गुरुदेव को यह विद्या देकर तथा सारा कार्यभार उनको सँभला कर हुजूर महाराज बहुत प्रसन्न हुए थे।

हमारे गुरुदेव के शिष्यों में ऐसे भी हो गए हैं जिन्होनें गुरुदेव के ऊपर के सद्गुरुओं के बारे में अपने शिष्यों को किसी प्रकार की जानकारी नहीं दी। यदि हम अपने पिता के बारे में सबके सामने प्रशंसा करें और अपने दादा (पिता के पिता) को गौण रखें अर्थात् वे अज्ञात रह जाएं, विशेषकर जब उनका हमारे इस अध्यात्म से इतना निकट का संबंध हो-तो इससे हमारे अध्यात्म मार्ग में उन महापुरुषों की कृपा की कमी होगी। इस कमी का फल क्या होगा हमारे सत्संगी भ्राता भली भाँति समझते है।

शाह साहब

फतेहगढ़ में एक शाह साहब किसी अच्छे गुरु के शिष्य थे और उन्हें सल्ब करने का बड़ा अभ्यास था। सल्ब का मतलब है कि दूसरे की अच्छाई बुराई को खींचकर अपना लेना या निकाल देना। यह कार्य केवल ध्यान (ख्याल) से होता है और हमारे सभी पुराने अभ्यासी इसको जानते हैं। तो वे शाह साहब अभ्यास करने वालों की अध्यात्म की कमाई खींचकर अपनी बना लिया करते थे। हमारे परम पूज्य श्रीमान् लालाजी महाराज को देखकर उन्हें बड़ा लालच आता था। सोचा करते कि इस अज़ीज को किसी दिन सल्ब करुंगा। संयोगवश एक दिन यह अवसर भी आ गया। लालाजी महाराज के गुरुदेव (हुजूर महाराज) कुछ बीमार थे और उन दिनों कानपुर इलाज के लिए पधारे हुए थे। आप फतेहगढ़ से हर शनिवार को उनकी सेवा में रेल से चले जाते और सोमवार को कचहरी के समय तक आ जाते। एक शनिवार को फतेहगढ़ स्टेशन की ओर थोड़ी तेज गति से जा रहे थे, रेल का समय हो रहा था कि सामने से शाह साहब आ गए और इन्हें बड़े प्यार से चिपटा कर बोले, "बहुत दिनों से तुम्हारी तलाश में था, बरखुरदार ! आज मिल पाये हो।"

अपना काम किया और चलते बने।

हमारे श्रीमान लालाजी महाराज को, जो चौबीसों घण्टे हर क्षण अपने गुरुदेव में लीन रहते थे, कुछ भी मालूम नहीं हुआ। असल में हुआ यह कि शाह साहब खुद ही श्रीमान के द्वारा, सल्ब हो गये। जिनकी इतनी दृढ़ धारणा हो कि चौबीसों घण्टे अपने गुरु में लीन रहे, किसी बड़ी से बड़ी शक्ति की भी सामर्थ्य उन्हें हानि पहुंचाने की नहीं है। यही ईश्वरीय शक्ति है जो सर्वोपरि है।

उधर लालाजी महाराज तो कानपुर पहुँच कर गुरुदेव की सेवा में लगे। इधर फतेहगढ़ में घर पहुँचते-पहुँचते तो शाह साहब के हृदय में इतनी जोर का दर्द हुआ कि किसी प्रकार चैन न पड़ा। हकीम डाक्टर भी कुछ निदान न कर सके। रात भर तड़पते हो

गया, तब कहीं शाह साहब को याद आया कि उन्होंने बरखुरदार की निस्बत सल्ब की है तभी से यह हाल है। आदमी दौड़ाए पता निशान मालूम किया और कानपुर हुजूर महाराज के पास दौड़े और जाकर चरणों में लोट गए। कहा कि आपके बरखुरदार ने मेरी निस्बत (आंतरिक सम्बन्ध) सल्ब कर ली है उसे वापिस दिला दीजिये। हुजूर महाराज ने कहा कि मेरा बरखुरदार कभी ऐसी गुस्ताखी नहीं कर सकता। फिर लालाजी साहब को बुलाकर इस विषय में पूछा तो पता चला कि वे तो इस विषय में अनजान थे। तब हुजूर महाराज ने शाह साहब को डांटा, "आप खुदा के नाम के बहाने ऐसी हरकतें करते हैं ? आपको शर्म आनी चाहिए। आपको मैंने सल्ब किया है आपकी अमानत मेरे तकिए के नीचे पड़ी है। आप आज से तौबा कीजिये आइन्दा किसी के साथ कभी ऐसी हरकत नहीं करेंगे।" शाह साहब के तौबा करने पर दया के समुद्र हुजूर महाराज ने उनकी धरोहर लौटा दी और वे प्रसन्नचित्त घर को लौट गए।

गुरु की जिस पर कृपा हो उसे संसार का कोई व्यक्ति तो क्या, प्रकृति माता भी कोई हानि नहीं पहुँचा सकती। गुरुदेव प्रभु के प्रतीक ही नहीं स्वयं ईश्वर के रूप हैं। उनकी दया-कृपा प्रभु की दया कृपा है उसमें यदि संदेह हो तो उसे निकाल फेंकिये। गुरुदेव हम सब को ऐसी सुबुद्धि देवें और उनकी दया-कृपा की हम सब पर

वर्षा होती रहे।

कोंच का भण्डारा

उत्तर प्रदेश के जालौन प्रान्त में एक छोटा नगर 'कोंच' है। सन् 1926 में वहां आस-पास के बहुत से सत्संगियों ने भण्डारे के रूप में एकत्रित होने के लिए श्रीमान लाला जी महाराज की अनुमति ले ली। श्रीमान लाला जी महाराज, श्रीमान चच्चा जी महाराज तथा परिवार के और आत्मिक कुटुम्ब के सभी सदस्य वहाँ पहुँचे। हम तो श्रीमान चच्चा जी महाराज के साथ रहते थे उनके साथ चले गए। दो दिन तक ऐसा आनन्द रहा कि हमें पहले कभी ऐसा अनुभव ही नहीं हुआ था। उस समय हम नवागन्तुक तो थे ही।

श्रीमान लालाजी महाराज के प्रिय शिष्यों में भाई साहब बाबू प्रभु दयाल जी (पेशकार, इन्कम टैक्स) भी कानपुर से हमारे साथ सपरिवार गये थे। उनका पुत्र गुरु दयाल 5-6 वर्ष का होगा। रात्रि के आरम्भ में ही पूजा के कमरे में आकर लेट गया और सो गया। उसे कहीं और स्थान मिला नहीं, न किसी ने उसे आकर सोते देखा। उस कमरे में परम संत भाई साहब बाबू बृजमोहन लाल जी पूजा कर रहे थे जो बहुत देर तक चली। उस रात्रि को ध्यान की अवस्था इतनी घनी थी कि पुराने-पुराने अभ्यासी भी पूरे होश में नहीं थे। बच्चों का हृदय कोमल और शुद्ध होता है, गुरु दयाल ने यह सब ग्रहण किया और क्योंकि यह सब उसकी सहन शक्ति से कहीं अधिक था वह ऐसा बेसुध हुआ कि सब प्रयास करने पर भी होश में न आया। श्रीमान लालाजी महाराज ने उसे देखा और उसे वापिस सल्ब तो कर दिया परन्तु आज्ञा दी कि इसे सोने दो प्रातः तक ठीक हो जायेगा।

हमें यह बात तभी से याद है। जब कभी कोई सज्जन अपने साथ छोटे बच्चों को सत्संग में ध्यान के समय में लाते हैं तो हमें यह घटना याद आ जाती है। हम तो यथाशक्ति उन बच्चों को ध्यान के मण्डल से बाहर कर देते हैं। यदि न हो सका तो थोड़ा सा ध्यान लगा कर ही बस कर देते हैं। बच्चों को प्रभावित होने का भय रहता है। इनका हृदय शुद्ध होता है आत्मा की सुरत-धार को ये सरलता से ग्रहण कर लेते हैं। सहन शक्ति न होने के कारण उन्हें इससे हानि हो सकती है।

बाजीगरी

गुरुदेव के एक शिष्य आपकी सेवा में फतेहगढ़ पहुँचे तो वे कुछ अधिक प्रसन्न मुद्रा में थे। संध्या समय जब गुरुदेव के पास पूजा के लिए बैठे तो कहने लगे कि आपकी कृपा से अब मुझ में यह शक्ति आ गई है कि बन्द मकान में से अपने आप बाहर आ जाता हूँ। गुरुदेव ने उनकी इस बात पर ध्यान नहीं दिया और दूसरी बात करने लगे। उन सज्जन से रहा नहीं गया और कुछ देर बाद फिर उन्होंने गुरुदेव से वही निवेदन किया। गुरुदेव उनका मतलब समझ गए और बोले हाँ हाँ भाई मैं भूल ही गया और एक दूसरे सज्जन (पूज्य भाई साहब परम संत श्रीमान मदन मोहन लाल जी) से कहा भाई जरा इन्हें इस कमरे में बन्द कर दो।

बन्द मकान या बन्द सन्दूक के बाहर निकल आना एक साधारण सी शक्ति है। अध्यात्म का मार्ग इतना ऊंचा है कि उसमें चलने वालों की राह में यह और ऐसी अनेक शक्तियाँ आया करती हैं। गुरुदेव इनकी ओर से हमारी दृष्टि हटा देते है जिससे हमारी राह में यह बाधक न हो जायें। इस सज्जन के साथ भी ऐसा ही हुआ। इस स्थान पर रुके हुए थे और इसे ऊंची सिद्धि समझ कर बड़े प्रसन्न थे। गुरुदेव के सम्मुख आते ही उन्हें इस आध्यात्मिक स्थान से थोड़ा ऊपर उठा दिया गया।

वे सज्जन अपनी सारी हेकड़ी भूल गए और जब कोई वश न चला तो बैठ कर रोने लगे। इधर गुरुदेव और लोगों से बातें कर रहे थे। उनके कानों में जब उनकी सिसकियों की आवाज पड़ी तो तुरन्त बोले, "भाई इनको खोल दो।" दरवाजा खेलने पर वे सज्जन रोते हुए आए और गुरुदेव के पैरों में गिरकर जोर-जोर से रोने लगे। मेरी वह शक्ति कहीं चली गई ?" गुरुदेव ने उनसे कहा कि "आप मेरे पास ईश्वर के नाम के लिए आते हैं या बाजीगरी सीखने? बाजीगरी सीखना हो तो दुनियाँ में बहुत लोग हैं जो यह सब आपको सिखा देंगे। मेरे पास तो भाई ईश्वर का नाम है। तुम्हें चाहिए तो मेरे पास आओ वरना तुम्हारी मर्जी !"

जादुई पुड़िया

हमारे भाई साहब इटावा निवासी श्रीमान प्रेम बिहारी लाल जी श्रीमान लाला जी महाराज के बहुत निकट रहे हैं। इन्होंने अपने जीवन की घटना हमें बतलाई जिनका उल्लेख हम यहाँ कर रहे हैं।

घटना सन् 1930 से पहले की है। इन भाई साहब के बड़े भ्राता श्रीमान अवध बिहारी लाल जी, जो श्रीमान लाला जी महाराज के दीक्षित शिष्य थे, एक बार एटा में इतने बीमार हो गए कि उनके जीवन की आशा भी क्षीण हो गई। डाक्टरों के समझ में नहीं आ रहा था कि क्या रोग है और इसका क्या निदान करें। घर के सब प्रियजनों को इनके इस कठिन रोग की सूचना भी दे दी गई थी। इनकी माता विशेष रूप से दुखी थीं और अधिकतर रोती ही रहती थी।

एक संध्या के समय जबकि हालत बहुत चिन्ता जनक थी, किसी ने द्वार खटखटाया। माताजी स्वयं ही खोलने गईं और देखा कि डाक्टर सोहन लाल, जो कि श्रीमान भाई साहब का इलाज कर रहे थे, साइकिल पर आये हैं। उन्होंने दो पुड़िया माताजी को दी और कहा कि एक तो अभी खिला दो। और दूसरी आवश्यकता हो तो कल प्रातः खिला देना। माताजी के आग्रह करने पर भी कि इन्हें देख तो लें, डाक्टर साहब ने इकार कर दिया और चले गये।

डाक्टर साहब के आदेशानुसार एक पुड़िया तो उसी समय दे दी गई और दूसरी सिरहाने तकिये के नीचे रख दी गई। इस पुड़िया ने जादू का सा काम किया और रात भर में उनकी तबियत, जो कि बहुत खराब थी, लगभग ठीक हो गई। रात को बहुत ऊंचा बुखार था। प्रातः कुछ न था। डाक्टर सोहन लाल प्रातः देखने को आये तो उन्होंने रोगी को स्वस्थ पाया। उन्हें माताजी ने बतलाया कि शाम को दी गई आपकी पुड़ियों में से उस समय एक ही दी गई जिसने इन्हें इतना स्वस्थ कर दिया। डाक्टर साहब ने आश्चर्यचकित होकर कहा कि "मैं स्वयं कल दोपहर से ही बुखार में पड़ा था मैं कैसे पुड़ियाँ देने आता ?"

अब यह सारा मामला ही एक रहस्य बन गया। विशेष रूप से जब सिरहाने रखी गई पुड़िया ढूंढने पर भी नहीं मिली।

दिन के दस बजे के लगभग डाक से श्रीमान लालाजी महाराज का पत्र मिला जिसमें आपने श्रीमान भाई साहब को लिखा था कि "रूहानियत (अध्यात्म मार्ग) में तकलीफ़ें आती ही रहती हैं। इनसे घबराना नहीं चाहिए। मुझे आशा है कि जिस समय यह पत्र मिलेगा, तुम बिलकुल स्वस्थ होंगे।"

अब यह रहस्य समझ में आया कि संध्या को वे दो पुड़िया देने वाले डाक्टर सोहन लाल न थे वरन् उन डाक्टर के भेष में श्रीमान लाला जी महाराज स्वयं ही आये थे।

इस घटना की जानकारी के बाद जब कभी भी हम किसी असाध्य रोगी को देखते हैं तो हमें श्रीमान लालाजी महाराज की इन दो पुड़ियों की याद आ जाती है।

सद्गुरु में लय अवस्था

खानदान नक्शबन्दिया की यह एक विशेषता सदा से चली आई है कि शिष्य का गुरु से जब आन्तरिक सम्बन्ध (निस्बत कायम) स्थापित हो जाता है, तब अप्रत्यक्ष रूप से गुरु छाया की भाँति शिष्य की सदैव देख-भाल करता है। इस पर पूज्य लालाजी के जीवन के कुछ दृष्टान्त दिये जाते हैं।

फर्रूखाबाद में एक बार श्री लाला जी के सहपाठियों ने गंगा किनारे स्वामी ब्रह्मानन्द जी के आश्रम के नजदीक पिकनिक का प्रोग्राम रखा। वहाँ पर ये लोग जबरदस्ती महात्मा जी को भी ले

गये। खाना खाने के पहले गाना बजाना होता रहा। इसके बाद भंग घुटी और सब ने पी। आपने पीने से मना किया और बड़ी नम्रता से कहा कि इसके लिए मुझे मजबूर न करें क्योंकि किसी प्रकार का नशा न करने की प्रतिज्ञा (मैंने) अपने गुरुदेव से कर ली है। लेकिन दोस्तों ने कुछ नहीं सुना, जबरदस्ती आपको रेती पर

लिटा दिया। दो चार दोस्तों ने हाथ पैर पकड़ लिये और एक दोस्त (पण्डित माता प्रसाद) आपकी छाती पर चढ़ बैठे और जबरदस्ती भंग पिलाने लगे। आपने बहुत मना किया लेकिन आखिर बेबस होकर चुप हो गये और अपने गुरुदेव का ध्यान करने लगे। एकाएक आपका चेहरा तमतमा उठा, एक प्रकाश चेहरे पर छा गया, चेहरा बदल गया और उस पर मूँछें और दाढ़ी मालूम होने लगीं। यह देखकर पण्डित माता प्रसाद घबरा गये, छाती पर से उठ गये और चुपचाप आश्चर्य चकित (हैरतज़दा) एक तरफ खड़े हो गये और लोगों को मना किया कि आपको मजबूर न करें और आपके हाल पर छोड़ दें। अतएव फिर आपको मजबूर नहीं किया गया और भंग नहीं पीनी पड़ी। थोड़ी देर बाद वहाँ पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी आ गये और जब उनको सब हाल मालूम हुआ तो उन्होंने सब लड़कों को फटकारा और कहा- "जिस लड़के को तुम आज यह झूठा नशा पिलाते हो, समय आने पर यह संसार के प्यासे जीवों को असली नशा पिलायेगा।" शाम को सब लोग गंगा जी से घर को वापिस आये। रास्ते में क्या देखते हैं कि सूफी साहब (हुजूर महाराज) उधर से पधार रहे हैं। महात्मा जी ने बहुत नम्रता से प्रणाम किया और उनके साथ टहलने के लिये चले गये और रास्ते में तमाम हाल निवेदन किया। हुजूर महाराज ने कहा "जो लोग परमात्मा पर भरोसा करते हैं परमात्मा बराबर उनकी मदद करता है।" पण्डित माता प्रसाद ने हुजूर महाराज को देखकर तुरन्त पहचान लिया कि ये तो वे ही महात्मा हैं जिनकी सूरत में जनाब लाला जी साहब का चेहरा बदल गया था।

दूसरे दिन उन्होंने महात्मा जी से बहुत नम्रता से हुजूर महाराज जी की सेवा में जाने के लिये कहा और दोनों सज्जन हुजूर महाराज की सेवा में उपस्थित हुए। हुजूर महाराज ने पण्डित माता प्रसाद पर भी अपनी कृपा दृष्टि की और अपनी शरण में ले लिया। पण्डित माता प्रसाद हुजूर महाराज की सेवा में अन्त समय तक आते रहे और हुजूर महाराज के अन्तर्ध्यान होने के बाद श्रीमान लाला जी साहब की सेवा में आते रहे और अन्त तक लाभान्वित होते रहे। श्रीकृष्ण सहाय जी हितकारी वकील कानपुर, श्री कालिका प्रसाद साहब पेशकार, श्री चिम्मनलाल साहब मुख्त्यार, डॉ० कृष्ण स्वरूप साहब, बाबू राम कृष्ण साहब जमींदार और बहुत से सज्जन महात्मा जी के द्वारा (वसीले से) हुजूर महाराज की सेवा में उपस्थित हुए, आपकी शरण ली और अपना जन्म सफल किया। हुजूर महाराज के अन्तर्ध्यान

होने के बाद यह सब सज्जन बराबर महात्मा जी की सेवा में आते रहे।

देह धरे का दण्ड

एक बार श्रीमान लाला जी साहब बहुत बीमार हो गये। चलने फिरने से लाचार थे और खाट से लग गये थे। बीमारी के कारण आप इतने परेशान नहीं थे जितने परेशान इस वजह से थे कि अब आप हुजूर महाराज की सेवा में नहीं जा पाते थे। एक दिन आप डोली में बैठ कर हुजूर महाराज की सेवा में पहुँचे और आँखों में आँसू भर लाये। हुजूर महाराज ने बड़े स्नेह से आपकी ओर देखा और बड़ी सहानुभूति से कहा-"बेटे पुत्तूलाल ! (हुजूर महाराज लाला जी को इसी नाम से पुकारते थे) घबराओ नहीं,

देह धरे का दंड है सब काहू को होय।
ज्ञानी भोगे ज्ञान से मूरख भोगे रोय॥

श्रीमान लाला जी कहा करते थे कि उस दिन से मेरी तबियत ठीक होने लगी। कभी-कभी हुजूर महाराज भी स्वयं दर्शन देने आ जाते थे। थोड़े ही दिनों में बिल्कुल ठीक हो गये।

गुरु में लयावस्था

जो अभ्यास हुजूर महाराज ने बतला दिया था उसको श्रीमान लाला जी साहब बराबर करते रहते थे। एक दफा जब आप नकल-नवीस थे आपको नकल करने के लिए एक मुक़दमे का फैसला दिया गया जिसमें लगभग 58 पेज (सफे) थे। आप अपने अभ्यास में मग्न थे और नकल भी करते जाते थे। जब 50 पेज (सफे) नकल कर चुके तो आपको ख्याल आया कि "क्योंकि मेरा मन दूसरी ओर लगा हुआ था नकल में जरूर बहुत सी गल्तियाँ हो गई होंगी। " आप इस ख्याल से घबरा गये और सोचने लगे कि अब इन काग़ज़ों के दाम कहाँ से दिये जायेंगे और बाद के पेज (सफे) बड़ी होशियारी और एहतियात से नकल किये। आप कहा करते थे कि "नकल की जब असल से मिलान की गई तो मुझको यह देखकर बहुत ताज्जुब हुआ

कि पहले 50 सफ़ों में एक भी गलती नहीं थी और दूसरे 8 सफ़ों में कई गल्तियाँ थीं ।" हुजूर महाराज श्रीमान लाला जी साहब से उमर भर में एक बार भी नाराज नहीं होने पाये । जो हुजूर महाराज दिल में सोचते थे वही महात्मा जी के दिल में आ जाता था । यह मोहब्बत की पराकाष्ठा (इन्तहा) है और जाहिर करती है कि दोनों के दिल कितने मिले हुए थे ।

एक रोज लाला जी साहब की तबियत यह चाहती थी कि जो कोई सामने आये उसको बेंतों से मारें । दिन भर यही ख्याल आता रहा और आप बहुत परेशान रहे । शाम को आपने अपनी हालत हुजूर महाराज से निवेदन की । उन्होंने कहा- "ठीक है, आज हम लड़कों पर नाराज होते रहे और उनको सजा देते रहे और क्योंकि तुम प्रत्येक पल हमारा ध्यान करते रहते हो इसलिये तुम पर भी वह असर पड़ा ।"

एक दिन हुजूर महाराज अकेले बैठे हौज के किनारे पानी से खेल रहे थे और पानी हाथों से इधर-उधर उछाल रहे थे । श्रीमान लाला जी दर्शनों के लिए उपस्थित हुए । प्रणाम किया और दो मिनट बाद ही जाने की आज्ञा चाही । हुजूर महाराज बहुत खुश हुए और कहने लगे- "बेटे पुत्तूलाल, क्या बात है कि जो हम सोचते हैं वही तुम करते हो ? इस वक्त हम यह चाहते थे कि तुम चले जाओ और तुमने फौरन इजाजत जाने की तलब की । हमको यह तमन्ना ही रही कि हम एक बार तो तुम से नाराज होते ।"

फ़नाफ़िल शेख फ़नाफ़िल मुरीद

श्रीमान लाला जी साहब कहा करते थे कि जो हुजूर महाराज के दिल में आता था वह ज्यों का त्यों हमारे दिल में उतर आता था । उन्होंने बताया कि यह एक सिद्धि है । अगर कोई शिष्य अपने हृदय को अपने गुरु के हृदय के सम्मुख (मुकाबले) लगातार बहत्तर घण्टे रखे और एक सेकिण्ड के लिये भी गाफिल न रहे तो यह सिद्धि आ जाती है और हमने यह सिद्धि अपनी शादी में सिद्ध की जब हमको अपने पिता जी की आज्ञा के अनुसार नाच-गाने के आयोजन (महफिल) में लगातार बैठना पड़ता था । लेकिन यह अमल उसी समय हो सकता है जब शिष्य अपने गुरु

का फिदाई (आशिक) हो और फ़नाफ़िल मुरीद हो और शिष्य अपने गुरु में पूरे तौर पर लय हो चुका हो और उसकी विचार शक्ति (कुब्बते-ख्याली) इतनी मजबूत हो कि अपने ख्याल से इतने बड़े समय में एक सेकिण्ड के लिए भी इधर-उधर न हो। सच तो यह है कि जब ऐसी हालत हो जाती है सभी तमाम तालीम जो गुरु के दिमाग में होती है शिष्य के दिमाग में आ जाती है। ऐसी हालत में दुई (दो पना) बिल्कुल मिट जाती है। मोहब्बत का तार जुड़ जाता है। जो एक सोचता है दूसरा उसको महसूस करता है। गुरु समुद्र पार बैठा हुआ शिक्षा दे रहा है और शिष्य समुद्र के पार बैठा हुआ उस शिक्षा को ग्रहण कर रहा है। दुई और दूरी बिल्कुल मिट जाती है। ऐसी हालत हो जाने पर पर्दा कर जाने के बाद भी शिष्य बराबर अपने गुरु से लाभान्वित (फ़ैजयाब) होता रहता है। इसी को निस्बत (आन्तरिक सम्बन्ध) कहते हैं।

प्रेम गली अति साँकरी, या में 'दो' न समाँय ।
जब लग 'मैं' था गुरु नहीं, अब गुरु हैं 'मैं' नाँय ।।

आप कहा करते थे कि सब लोग हुजूर महाराज के पाँव दबाया करते थे और हमारी भी इच्छा थी कि आपके पांव दबायें लेकिन कभी हिम्मत नहीं पड़ी क्योंकि हमारे हाथ बहुत सख्त थे और हुजूर महाराज के पैर बहुत ही मुलायम।

एक बार आप देहली में चाँदनी चौक किसी काम से पधारे और घंटाघर से फतेहपुरी की तरफ रवाना हुए फिर वहाँ से सब्जी मंडी की तरफ मुड़ गये और बर्फ खाने तक बराबर चलते चले गये। बर्फखाने पहुंचकर, जो घंटाघर से करीब डेढ़ मील की दूरी पर है, महात्मा जी ठहर गये और जो इनके साथ थे, उनसे पूछा- "जानते हो कि मैं यहाँ क्यों आये?" जवाब मिला कि "नहीं मालूम।" आपने कहा- "उन बुजुर्ग को देखो जो सामने जा रहे हैं उनकी शक्ल सूरत श्री हुजूर महाराज से बहुत मिलती है। उनको देखता हुआ मैं यहाँ चला आया।" इतना कह कर नेत्रों में जल भर लाये। आपको हुजूर महाराज से बहुत प्रेम था। उनके विषय में बहुत कम बातचीत करते थे और जब कभी बातचीत करते, सारा शरीर प्रेम के आवेश में काँपने लग जाता और बाद को आँसू आ जाते। एक बार आपने श्रीमुख से कहा- "हमारी आत्मा उस आनन्द के लिये बेचैन है जो हमको अपने पीर (गुरु) की सोहबत

(सत्संग) में मिलता था।"

एक समय श्रीमान चाचा जी साहब (मुन्शी रघुबर दयाल जी) ने बतलाया कि "श्री हुजूर महाराज महात्मा जी का बहुत अदब करते थे। जब कभी आप बच्चों से खेलते होते और लाला जो साहब आ जाते तो हुजूर महाराज चुप हो जाते (खामोशी अख्तियार कर लेते) और दूसरों को भी चुप रहने का इशारा कर देते। "लाला जी साहब ने उन्हें ऐसा कहते सुन लिया। आप चाचा जी साहब पर बहुत नाराज हुए और फिर देर तक रोते रहे। चच्चाजी महाराज को आचार्य पदवी देते समय आप हुजूर महाराज का खत पढ़ने के बाद उनकी याद करके फूट-फूट कर रोए। जब कभी भी आप हुजूर महाराज का जिक्र करते, हमेशा प्रेम का आवेश हो जाता, यद्यपि आप बहुत सहन (जब्त) करने वाले थे फिर भी उस प्रेमावेश के वेग को नहीं रोक पाते और आँखों में आँसू छलक आते थे। कभी-कभी तो जोर-जोर से रोने लगते और हिचकी बंध जाती।

जो तनख्वाह महात्मा जी को मिलती थी वह आप गुरुदेव की सेवा में भेंट कर देते थे और गुरुदेव किसी के हाथ घर भिजवा देते थे।

फ़ाक़ाकशी

एक बार हुजूर महाराज के यहाँ कई रोज से उपवास चल रहा था क्योंकि घर में भोजन सामग्री नहीं थी और यही हालत महात्मा जी के यहाँ थी। आपके पास किसी जगह से एक मनीआर्डर के पन्द्रह रुपये आये। आपने उनमें से दस रुपये महात्मा जी के यहाँ भिजवा दिये और पाँच रुपये अपनी माता जी के पास भिजवा दिये ताकि भोजन आदि का सामान मंगा ले। शाम को जब आप घर आये और खाने का इन्तजाम न देखा तो अपनी माता जी से पूछा कि अभी तक खाना क्यों नहीं बनवाया। माता जी ने उत्तर दिया कि "जो रुपया तुमने भेजा था वह हमने दूसरे घर (महात्मा जी के घर) भिजवा दिया क्योंकि वहाँ जरूरत थी। "आप यह सुन कर हंस पड़े, बहुत खुश हुए और कहा, "बहुत अच्छा किया" और उस रोज उपवास ही रहा।

हुजूर महाराज एक उच्च कोटि के सन्त थे। बहुत सादा स्वभाव, बहुत

स्वच्छ वस्त्र धारी (खुशपोश) और पाक-साफ रहने वाले, हँसमुख और बड़े दयालु। आपको ताअस्सुब (धार्मिक पक्षपात) छू भी नहीं गया था। मुसलमान, हिन्दू, ईसाई सब आपकी दृष्टि में एक थे और सभी वर्ग के लोग आपके शिष्य थे। जब कभी लाला जी साहब के घर से खाना थाली में आता या आप स्वयं वहाँ पधारते तो आप अपने बरतनों में भोजन रखवा लेते या पत्तल मैं रखवा लेते। कभी-कभी हाथ पर रख कर ही खाना खा लेते थे और पानी चुल्लू से पी लेते। प्रसाद के मौक़े पर हिन्दुओं के लिये प्रसाद किसी हिन्दू से मंगवा लेते और उसी से बंटवा देते। वे कहा करते थे कि हर मनुष्य को अपने धर्म के नियमों पर चलना चाहिये। यद्यपि आपके कई मुस्लिम शिष्य भी थे परन्तु आपने लाला जी साहब को अपना उत्तराधिकारी बनाया। यह एक ऐसा अद्भुत उदाहरण है जब कि एक मुस्लिम सूफी ने बिना धर्म परिवर्तन कराये अपनी सारी आध्यात्मिक पूंजी एक हिन्दू को दे दी।

हुजूर महाराज के देहान्त के बाद महात्मा जी का तबादला सन् 1908 में कायमगंज से फतेहगढ़ को हो गया। आपने इस वक्त एकान्त सेवन आरम्भ कर दिया। दफ्तर के काम के अलावा सारा समय परमात्मा की याद में व्यतीत करते। एक पुराना नौकर जो बचपन से आपके यहाँ था इस समय भी आपके साथ था, वही तमाम घर का इन्तजाम करता और सब सेवा करता। यह स्वामी-भक्त सेवक अन्त समय तक आपके साथ रहा।

सत्संग का प्रभाव

आप कभी-कभी छुट्टियों में श्रीमान मौलवी अब्दुल ग़नी साहब की सेवा में मैनपुरी या भोगाँव जाया करते और मौलवी साहब भी कभी-कभी स्वयं आपके पास आते रहते और अपने सत्संग से लाभ पहुँचाते रहते थे। यद्यपि पास पड़ोसी आपके पवित्र जीवन और ईश्वर-भक्ति से अनभिज्ञ थे लेकिन फिर भी आपकी रहनी-सहनी का उन सभी लोगों पर बड़ा गहरा असर पड़ा। सभी लोग आपका आदर करते और आपसे प्रेम करते थे। आरम्भ में कुछ अध्यापक आपकी ओर आकर्षित हुए और आपके पास नित्य आने लगे। इसके बाद स्कूल के कुछ लड़के भी आने लगे। उन लड़कों में कुछ ऐसे भी लड़के थे जो बड़े उद्दण्ड और लड़ाकू थे। इन लड़कों के

रहन-सहन पर आपकी पवित्र संगति का बड़ा गहरा असर पड़ा और उनका नित्य का रहन-सहन सुधरने लगा, बुरी आदतें छूटने लगीं और उन की जगह नेक और भली आदतों ने ले ली। जनता को इन लड़कों की हालत देखकर बड़ा आश्चर्य-होता था कि क्या से क्या हो गये। आरम्भ में तो लोग यह समझे कि यह अन्तर केवल कुछ ही दिनों का है लेकिन जब देखा कि पुरानी हालतों पर आने की बजाय लड़कों के रहन-सहन में नित नई उन्नति ही होती जा रही है तो लोगों को भी चाव पैदा हुआ कि ऐसे महापुरुष के दर्शन करने चाहिये जिनके सत्संग के प्रभाव से इतनी बड़ी तब्दीली लड़कों के रहन-सहन में हुई है। अब तो लोगों के झुण्ड के झुण्ड आने लगे और एक बड़ी संख्या मनुष्यों की आपकी महानता के कारण आपके चारों ओर इकट्ठी हो गई। जो भी आता आपके महान चरित्र से प्रभावित हो जाता। जो एक बार भी आ गया आपके प्रभाव से खाली नहीं गाया। ऐसा भी हुआ कि कुछ लोगों ने आपका सत्संग छोड़कर दूसरे सन्तों का सत्संग अपना लिया और दूसरी जगह से फ़ैजयाब हुए लेकिन उन्होंने भी हमेशा यही कहा कि "आपके पूर्ण सन्त (मुकम्मिल) होने में शक नहीं है लेकिन यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारा हिस्सा यहाँ नहीं था। "कुछ सज्जनों से आप स्वयं कह दिया करते थे कि "तुम्हारा हिस्सा मेरे पास नहीं है अमुक महापुरुष से तुम को फायदा होगा।" फिर भी बगैर असर के कोई वापिस नहीं गया। आप कहा करते थे कि "हमारा काम तो धोबी या भंगी का है, जो आ गया उसके मन को धो डाला। साफ होने पर अपने संस्कार के अनुसार कोई न कोई पथ-प्रदर्शक (रहबर) मिल ही जायेगा।" देखा भी यही गया कि आपके थोड़ी देर के सत्संग के प्रभाव से सैकड़ों आदमियों का जीवन बदल गया और उनका जन्म सफल हो गया।

हम नशीनी ताअते बा औलिया ।
बेहतर अज़ सद साल ताअत बेरिया ।।

(अर्थ-सन्त के एक क्षण के सत्संग से जो लाभ होता है, वह बरसों की सच्ची तपस्या से कहीं ज्यादा है।)

जो सज्जन आपके प्रेम-पात्र हुए उनकी किस्मत का सितारा चमक उठा।

वे अब भी उनको दर्शन देते हैं और बराबर लाभान्वित (फ़ैजयाब) करते रहते हैं और सत पद तक पहुँचा कर ही छोड़ेंगे। जो किसी कारण जीवन में आपके सत्संग से वंचित रहे वे हमेशा अब भी उनकी याद करते हैं और गुप्त रुप से फ़ैजयाब हो रहे हैं। आप कहा करते थे-

कदग़न है यही ग़ैर कोई आने न पाये ।
गर बेखबर आ जाय तो फिर जाने न पाये ॥

(अर्थ-इस बात की मनाही है कि कोई ग़ैर आदमी अपनी सोहबत में आ जाये। यदि भूल से आ जाये तो फिर जाने न पाये।)

शिक्षा का कार्य

आरम्भ में आप सब नये सज्जनों को पूज्य मौलवी साहब की सेवा में पेश कर देते थे बाद को मौलवी साहब के कहने पर कि "तुम स्वयं काम क्यों नहीं शुरू करते" और अपने गुरुदेव की आज्ञा का ख्याल करके (कि मेरे मिशन का प्रचार करो और यही तुम्हारी निजात (मोक्ष) का निमित्त (जरिया) होगा घबरा जाते कि क्या करें और क्या न करें ? इसीलिये हिम्मत नहीं पड़ती थी कि इतनी बड़ी जिम्मेदारी को अपने ऊपर लें। इधर अपनी कमज़ोरियों पर निगाह थी उधर गुरुदेव की आज्ञा। अजब परेशानी थी, अन्त को आपने यही फैसला करके कि "मैं तो चपरासी हूँ मेरा फर्ज तो हुक्म बजा लाना है और बस इसमें कामयाबी होती है या नहीं, इसको हाकिम खुद जाने, जिसका वह काम है।" सन् 1914 ई० से गुरुदेव का काम शुरू कर दिया। सुबह सात बजे से साढ़े नौ बजे तक लोगों को उपदेश देते और अभ्यास कराते, दस बजे दफ्तर को जाते और पाँच बजे आते। फिर छः बजे शाम से रात को दस बजे तक अध्यात्म-विद्या की शिक्षा में व्यस्त रहते। रात को अभ्यास करते। अकसर छुट्टियों में बाहर जाते और शिक्षा देते। इस तरह बराबर सन् 1931 ई० तक रात-दिन दफ्तर के समय को छोड़कर अध्यात्म-विद्या का प्रचार और प्रसार करते रहे।

गुमशुदा मिसल

सन् 1929 में जब आप फतेहगढ़ कलक्ट्री में मुहाफ़िज़ दफ्तर (Recorder Keeper) का काम कर रहे थे, एक मिसल (File) गुम हो गई। बहुत तलाश करने पर भी नहीं मिली। मुहाफ़िज़ दफ्तर के नाते आपकी जिम्मेदारी थी। शाम को दफ्तर से आकर आप इसी विचार में बैठे थे कि मिसल कहाँ गई। आपके सामने एक क्लर्क की सूरत आई-वह डरा हुआ था। आपने समझ लिया और उसके घर चले गये। जाकर कहा वह मिसल जो तुम्हारे पास है मुझे दे दो। उसे डर था कि कलक्टर साहब मुझे कड़ा दण्ड देंगे। आपने उससे यह वायदा किया कि उसका नाम नहीं बतलायेंगे। उसने मिसल कभी देखने को ली थी वापिस करने के बजाय उसके बस्ते में गलती से बंध गई। डर के मारे वह वापिस नहीं कर रहा था।

आपने मिसल कलक्टर साहब को पेश कर दी और बहुत कुछ कहने पर भी उस क्लर्क का नाम नहीं बतलाया।

सेवानिवृत्ति (Pension)

उन्हीं दिनों एक बार कुछ सत्संगी बाहर से आ गये और उनके साथ आप इतने व्यस्त हो गये कि कचहरी जाने की भी याद नहीं रही। संयोगवश उस दिन कमिश्नर साहब का इन्स्पेक्शन था। दोपहर बाद जब आपको ध्यान आया तो घबरा गये और सब कुछ छोड़ कर कपड़े पहन कर कचहरी लगभग भागते हुए गये। डरते-डरते एक साथी से पूछा 'इन्स्पेक्शन हो गया ?' उसने बड़े अचम्भे के साथ उत्तर दिया "बड़े बाबू ! मुझसे मजाक कर रहे हो ? आपने खुद खड़े होकर तो मुआयना कराया जिसने जो मिसल माँगी एक झटके से निकाल कर पेश कर दी। आपका मुआयना सबसे अच्छा रहा - आप कैसी बातें कर रहे हैं ?" आपको रहस्य समझते देर नहीं लगी कि उनके स्थान पर उनके गुरुदेव ने यह मुआयना करवाया है। एक तरफ बैठ कर थोड़े रोये और अपना इस्तीफा (Resignation) लिख कर कलक्टर साहब को पेश किया। पूछने पर केवल इतना ही कहा कि "मैं अब काम नहीं कर सकूंगा।" बहुत कहने पर भी न माने। कलक्टर साहब ने आपको रिटायर

करा दिया। आपकी पेन्शन हो गई।

अब और आज़ादी मिल गई और सारा समय सुबह छः बजे से रात के दस बजे तक उपदेश और अभ्यास कराने में व्यतीत करते। दोपहर से दो-तीन घण्टे पत्रों का उत्तर देते और किताबों के लिखने में व्यतीत करते। बीमारी की हालत तक में बराबर तालीम देते रहते।

महा प्रयाण

परमात्मा को जो काम आपसे लेना था वह प्रायः समाप्त हो चुका था। सन् 1931 ई० में आप जिगर (यकृत) की बीमारी से पीड़ित हो गये। हर प्रकार का इलाज डाक्टरी, यूनानी, आयुर्वेदिक आदि किया गया परन्तु लाभ नहीं हुआ। बीमारी धीरे-धीरे बढ़ती गई और असाध्य हो गई। आप बहुत कमजोर हो गये। अधिकतर समय मौन रहते और आँखें बन्द किये लेटे रहते। यद्यपि आपके जिगर में असह्य पीड़ा थी लेकिन शान्ति पूर्वक सहन करते रहे। जैसे-जैसे अन्त समय निकट आता जाता था आप परमात्मा के प्रेम में विह्वल होते जाते थे। आँखों से आँसुओं की नदी बहने लगती और कहते-

वादये वस्ल चूं शबद नज़दीक ।
आतिशे शौक़ तेज़ तर गरदद ॥

(अर्थ-माशूक़ से मिलाप की घड़ी जितनी नजदीक होती जाती है मिलने के शौक़ की आग तेज़ होती जाती है।)

मृत्यु से एक सप्ताह पहले इलाज सब बन्द कर दिये। जो सत्संगी भाई वहाँ पर मौजूद थे उनको अन्त समय तक तालीम देते रहे। मृत्यु से एक दो दिन पहले कहने लगे कि "बुजुर्गान सिलसिला (वंश के महापुरुषों) की रूहों (आत्माओं) को हर समय अपनी खाट के चारों तरफ पाता हूँ। अब माशूक़ के मिलाप का समय बहुत नजदीक है।"

अब आपको दस्त आने लगे। चलना-फिरना बन्द हो गया। कमज़ोरी

ज्यादा बढ़ गई। 14 अगस्त सर 1931 ई० की सुबह को पूजा वाले कमरे में जहाँ हमेशा संध्या हुआ करती थी, बिना किसी की सहायता के स्वयं पधारे। खाट पर लेट गये और आँखें बन्द कर ली और फिर नहीं खोली और न किसी से बातचीत की। मक्खी वग़ैरा को हाथ से उड़ा देते थे और बस रात के एक बजे ईश्वर की उस अखण्ड ज्योति ने पार्थिव शरीर को छोड़ दिया और अपने असल भण्डार में सदा के लिये विलीन हो गई।

हम ना मरे, मरा संसार ।
हमको मिला जिलावनहार ॥

शिक्षा

सत्संगियों के लिये महात्मा जी की शिक्षा वास्तव में तो प्रेम की शिक्षा थी। प्रत्येक से स्नेह करना और प्रत्येक को प्रेम की डोर में बाँधे रखना यह उनका तरीका था। महात्मा जी का कथन था कि यदि शिष्य गुरु से प्रेम करता है, उनका सत्संग करता है और उनके आदेश का पालन करता है तो इसी से उसकी आध्यात्मिक पूर्णता (तकमील) हो जायेगी। विशेष व्यक्तियों को महात्मा जी ने कोई शिक्षा नहीं दी। केवल इतना था कि वे सत्संग में आते रहें और उनका उद्धार हो जाय परन्तु यह तरीका केवल उत्तराधिकारियों के लिये ही था। आम तौर पर जैसा शिष्य का पात्र होता उसी के अनुसार उसे शिक्षा देते। किसी को सुरत शब्द की शिक्षा देते तो किसी को दिल के जाप (ज़िक्रे खफी) की और किसी को वज़ीफ़ा बतला देते थे। किसी को कुछ कर्म बतला देते थे। परन्तु अधिकतर गुरु से तवज्जोह लेने, सत्संग करने और दिल के जाप करने पर जोर देते थे। अपनी शक्ल का ध्यान करने को बहुत ही कम बताते थे। महात्मा जी हृदय चक्र (क़ल्ब के मुकाम) पर ॐ शब्द का जाप कराते थे। उनके सत्संग के प्रताप से और तवज्जोह से चक्र (लतीफ़े) जागृत (ज़ाकिर) हो जाते थे, उनमें अनहद-शब्द सुनाई देने लगता था। ऐसा होने पर आदेश देते कि इन्हीं को सुनते रहो और इतना अभ्यास करो कि उठते बैठते, सोते-जागते, यहाँ तक कि एक सेकिण्ड के साठवें हिस्से तक भी इससे ग़ाफ़िल मत रहो।

महात्मा जी की शिक्षा एक मिली जुली शिक्षा थी जिसमें कर्म-काण्ड, कर्मयोग, भक्ति योग, ज्ञान योग ओर प्रेम योग सभी शामिल थे। आरम्भ में महात्मा जी की सेवा में कुछ विद्यार्थी आये। उनके लिये शिक्षा यह थी कि वे महात्मा जी के पास बैठे रहा करें और उनका गायन सुना करें। यदि कोई उनसे ध्यान के विषय में कुछ पूछता तो वे कह देते थे कि जो वस्तु सबसे अधिक अच्छी लगे उसका ही ध्यान करो। ज्ञानियों को ज्ञान की शिक्षा देते और उस विषय को खूब समझाते। सारांश यह है कि प्रत्येक के लिये उनकी शिक्षा का नया तरीका था।

जीवन के आदर्श

महात्मा जी का कथन था कि फकीरी की तीन शर्तें हैं-(1) इल्लत, अर्थात् उसे कोई शारीरिक व्याधि रहनी चाहिये। (2) क़िल्लत, अर्थात् रुपये की कमी रहनी चाहिये। (3) ज़िल्लत, अर्थात् लोग उसकी निन्दा करें। इनसे अहंकार दबा रहता है और घमंड नहीं होता। जिसने अपने मन को मार लिया वह दुनियाँ का बादशाह है। इससे कठिन काम दुनियाँ में कोई नहीं है। महात्मा रामचन्द्र जी को सब मतों की धार्मिक पुस्तकों पर विश्वास था। प्रत्येक धर्म के महापुरुषों का वे आदर करते थे, उन की वाणी को पढ़ते और सुनते थे और उनके वचनों का बहुत आदर करते थे। महात्मा जी आजीवन अपने गुरुदेव के आदेश पर दृढ़ता पूर्वक चलते रहे और वह आदेश यह था कि "जिस धर्म में जन्म लिया है उसी के अनुसार कर्म-काण्ड करना चाहिये।" अतः यद्यपि उनके गुरुदेव इस्लाम धर्म की शरह (कर्म-काण्ड) के अनुसार ही जीवन व्यतीत करते थे वे स्वयं हिन्दू होने के नाते हिन्दू रीति-रिवाजों को बरतते थे। न कभी महात्मा जी ने रोज़ा रखा और न नमाज पढ़ी। अपनी तस्वीर खिंचवाने या उसको प्रेमी-जन अपने घर में रखने का महात्मा जी विरोध न करते परन्तु उसे मूर्ति की तरह पूजने के आप विरुद्ध थे। महात्मा जी अपने चरण छुआना पसन्द नहीं करते थे परन्तु जो प्रेमी-जन चरण छूना चाहते थे उन्हें इसलिये नहीं रोकते थे कि यह प्रथा हिन्दुओं में बहुत पहले से चली आई है कि गुरु जनों को प्रणाम चरण छू कर किया जाता है।

अपने आध्यात्मिक वंश के पूर्व महापुरुषों के प्रति उनका बड़ा आदरभाव

था। वे कहा करते थे कि हमारे वंश की महानता हमारे पूर्वजों के कारण है। सदा उनके लिए प्रार्थना करते रहते और किसी भी सांसारिक या पारमार्थिक काम में सफलता मिलने पर उन्हें धन्यवाद देते और उसको उन्हीं के अर्पण करते।

सिद्धि शक्ति को वे जानते थे परन्तु उनके क़ायल नहीं थे। गन्डे ताबीज़ के भी महात्मा जी पक्ष में नहीं थे यद्यपि वे इस विद्या को भी जानते थे और अपने प्रेमी शिष्यों में से उन्होंने कईयों को यह विद्या बताई और ताबीज देने की इजाजत भी दी। हाँ, यदि उन्हें कोई मजबूर करता तो वे ताबीज लिख देते थे।

सदाचार से रहने पर वे बहुत जोर देते थे। उनका कहना था कि जब तक आचरण पूर्णतया ठीक नहीं हो जाता तब तक आत्मानुभव नहीं होता। ज्यादा अभ्यास (रियाज़त) और वज़ीफ़ा पढ़ने के पक्ष में न थे बीच का रास्ता पसन्द करते थे। महात्मा जी का कहना था कि दिल का अभ्यास सबसे ऊंचा है, इसका असर शरीर, मन और आत्मा पर पड़ता है। दिल को काबू में रखना और उसे तरतीब देते रहना यही असली अभ्यास है।

प्रार्थना (दुआ) में उनका बहुत विश्वास था लेकिन अपने लिये व दुनियावी फ़ायदे के लिये प्रार्थना (दुआ) करना उन्हें मंजूर न था। दूसरों के लिये हर वक्त दुआ करने को तैयार रहते थे।

महात्मा जी का कहना था कि गुरु हर मनुष्य को करना चाहिए लेकिन गुरु बहुत देख-भाल कर करना चाहिये। एक बार गुरु धारण कर लेने पर अपने आपको पूरी तरह अपने को गुरु के आधीन कर देना चाहिए जिस तरह मुर्दा ज़िन्दों के हाथ में होता है।

उनका कथन था कि जिस मनुष्य से तुम को डर हो और उलझन होती हो उसको अपना शुभ-चिन्तक और मित्र समझो और ज़बरदस्ती इसका अभ्यास बढ़ाओ। एकान्त में बैठ कर बिना किसी दिन चूके हुए थोड़ी देर यह अभ्यास किया करो कि अमुक व्यक्ति मेरा मित्र है और शुभ-चिन्तक है।

समाधि

आपकी समाधि फतेहगढ़ में कानपुर रोड़ पर नबेदिया में है जहाँ पर प्रतिवर्ष गुड फ्राइडे पर तीन दिन भंडारा होता है। आपकी समाधि इस धरा पर उपलब्ध उन गिने चुने विशेष स्थानों में है जहाँ नमन करने से कोटि-कोटि जन्मों के पापों का क्षय हो जाता है। अपने जीवन में कोई एक बार भी इस समाधि पर अगर सच्चे मन से पहुँच गया है तो कालांतर में उसके भवसागर से उद्धार हो जाने में कोई शंका नहीं है ऐसा मेरा मानना है।

35A - हजरत जनाब महात्मा रघुबर दयाल जी साहब (कानपुर)

आप परम सन्त सद्गुरु श्रीमान लाला जी महाराज के छोटे भाई थे। आपका जन्म 7 अक्टूबर सर 1875 को हुआ। आपका लालन-पालन भी श्रीमान लालाजी महाराज के साथ-साथ अपने पिता श्रीमान हरबंस राय चौधरी साहब की ही देख रेख में हुआ। पिता के स्वर्गवास के पश्चात् आपने बड़े भ्राता श्रीमान लालाजी महाराज को ही अपने पिता के स्थान पर मान कर उनकी आज्ञा तथा इच्छा का अनुसरण इस प्रकार किया कि जिसका उदाहरण इस युग में मिलना कठिन ही नहीं असम्भव है। हाँ यदि हम भगवान राम के प्रति भक्त-श्रेष्ठ, भरत जी का उदाहरण प्रस्तुत करें तो बहुत कुछ ठीक बैठ सकता है।

बचपन में आपका लालन-पालन भी बड़े ठाट बाट से हुआ परन्तु पिता के स्वर्गवास के पश्चात् आपको भी उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिनका हमारे श्रीमान लालाजी महाराज को। परन्तु आपकी यह विशेषता थी कि आप पूर्णरूप से श्रीमान लालाजी महाराज पर आश्रित ही नहीं अपितु समर्पित अर्थात् न्योछावर थे। उर्दू भाषा की उच्च शिक्षा तथा अँग्रेज़ी की थोड़ी शिक्षा प्राप्त करके आपने अपना प्रारम्भिक कौटुम्बिक जीवन असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर तार बाबू के

पद से प्रारम्भ किया। एक अंग्रेज इंस्पेक्टर उन दिनों गालियाँ बहुत देता था। इनको भी एक दिन उसने गालियाँ सुनाई तो थोड़ी देर तो आप सुनते रहे फिर उसको कमर पकड़ कर जमीन पर पटक दिया और सीने पर चढ़ बैठे। लोगों ने बीच-बचाव किया और वह इंस्पेक्टर चुपचाप चला गया। इन पर कोई केस बने उसके पहले ही आप इस्तीफा देकर नौकरी छोड़ आये।

फिर आपने अपना जीवन ग्राम अलीगढ़ जिला फतेहगढ़ में व्यतीत किया। एक प्रतिष्ठित वकील श्रीमान मुन्शी चिम्मनलाल साहब के पास आप कार्य करते रहे तथा श्रीमान लालाजी महाराज के आदेशानुसार उन्हीं वकील साहब के पास अपना आध्यात्मिक अभ्यास भी करते रहे।

अलीगढ़ ग्राम में तहसील का कार्यालय था और यह स्थान फतेहगढ़ से लगभग छः मील उत्तर दिशा में गंगा जी के पार गंगा, रामगंगा के बीच में था। फतेहगढ़ आने जाने के लिये गंगा जी नौका द्वारा ही पार करनी पड़ती थी। आपके ज्येष्ठ सुपुत्र महात्मा बाबू बृजमोहन लाल ने फतेहगढ़ में श्रीमान लाला जी महाराज के संरक्षण तथा देखरेख में विद्याध्ययन किया व सन् 1923 में हाईस्कूल की परीक्षा पास करके पुलिस विभाग में नौकरी कर ली। जब इनकी पोस्टिंग कानपुर हुई तो फिर श्रीमान चच्चाजी महाराज सपरिवार कानपुर आकर रहने लगे।

आपके द्वितीय सुपुत्र महात्मा राधा मोहन लाल ने भी फतेहगढ़ में श्रीमान लाला जी महाराज के पास रहकर हाई स्कूल तक पढ़ा और सन् 1925 में हाईस्कूल परीक्षा पास करके कानपुर में जज साहब के कार्यालय में नौकरी कर ली। छोटे सुपुत्र महात्मा श्री ज्योतिन्द्र मोहन लाल उस समय छोटे थे तथा अध्ययन कर रहे थे, कानपुर आकर पढ़ने लगे।

आपका अलीगढ़ निवास कठोर तपस्या का समय था। श्रीमान महात्मा श्री चिम्मनलाल साहब के निर्देशानुसार आपने कठिन तपस्या की। यहाँ तक कि कई-कई दिन निराहार रह कर तथा रात-रात भर जाग कर आध्यात्मिक अभ्यास की पराकाष्ठा पर पहुँचे। श्रीमान लालाजी महाराज ने आपकी इस कठोर तपस्या तथा आध्यात्मिक तीव्र प्रगति से प्रसन्न होकर अलीगढ़ में ही आपको परम संत

सद्गुरु की पदवी प्रदान की।

श्रीमान लालाजी महाराज के प्रति आपके आदर तथा प्रेम के उत्तर में, जिस का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं, आपके लिए श्रीमान लाला जी महाराज का प्रेम भी अगाध था। वे अधिक समय तक उन्हें देखे बिना रह नहीं सकते थे। अतः लगभग मास में एक दो बार या तो श्रीमान लालाजी महाराज इनके पास पहुँचते थे या आप उनकी सेवा में उपस्थित हो जाते थे।

फतेहगढ़ में एक बार आप इतने अधिक अस्वस्थ हो गये कि आपके जीवित रहने की आशा भी क्षीण होने लगी। उस समय श्रीमान लालाजी महाराज की चिन्ता का ठिकाना न रहा। अपने गुरुदेव जो उस समय शरीर में नहीं थे बहुत कुछ अनुनय विनय की। आपकी विनती स्वीकार कर ली गई। कहते हैं कि श्रीमान लालाजी महाराज ने अपनी आयु का एक विशेष भाग आपको देना चाहा था। जिसकी स्वीकृति मिल गई। श्रीमान् लालाजी महाराज तो अपनी आयु के 59 वर्ष भी पूरे नहीं कर सके तथा निर्वाण प्राप्त किया। परन्तु श्रीमान चच्चा महाराज आपके पश्चात् लगभग 16 वर्ष तक आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्व साधारण की सेवा करते रहे। श्रीमान लालाजी महाराज के निर्वाण के पश्चात् का आपका जीवन पूर्ण रूप से श्रीमान लालाजी महाराज के जीवन के अनुरूप रहा, तथा वे श्रीमान लालाजी महाराज का ही आध्यात्मिक कार्य जीवन पर्यन्त करते रहे। मुझे पूज्य भाई साहब परम संत डाक्टर श्याम लाल जी गाजियाबाद निवासी ने बतलाया था कि पहले श्रीमान चच्चाजी महाराज फ़रमाया करते थे कि उनकी वापसी (अर्थात् निर्वाण) पहले होगी और श्रीमान लालाजी महाराज की बाद में होगी। जब सन् 1931 में श्रीमान लाला जी महाराज की वापसी हो गई तब इन्हीं श्रीमान डाक्टर साहब ने श्रीमान चच्चाजी महाराज से फिर एक बार प्रश्न किया कि आप तो फ़रमाते थे आपकी वापसी पहले होगी और श्रीमान लालाजी महाराज की बाद में ? तो आपने बतलाया कि श्रीमान लालाजी महाराज ने अपनी आयु का एक भाग उनको दिया है इस कारण ऐसा हुआ।

सर 1924 के पश्चात् का समय आपका कानपुर नगर में ही बीता। आरम्भ

में आपने एक छोटा सा मकान कर्नलगंज खटिकाना में लिया। कुछ वर्ष पश्चात् जब आर्य नगर बसाया जा रहा था तब वहाँ आपके नाम कई प्लाट कर दिये गए। जिनमें से एक आपने अपने लिए रखकर बाकी अपने पास आने वाले अभ्यासियों को बाँट दिए। आपके रहने के लिए यहाँ एक मकान बन गया जिसका नाम 'रघुबर भवन' तथा उस मार्ग का नाम 'सन्त शिरोमणि महात्मा श्री रघुबरदयाल मार्ग' रखा गया।

जहां तक हमारे श्रीमान चच्चा जी महाराज का प्रश्न है हमने स्वयं देखा है कि वे पूज्य माता जी (धर्म पत्नी श्रीमान लालाजी महाराज के सामने सदा हाथ बांध कर खड़े होते थे तथा उनकी प्रत्येक आज्ञा को बहुत अच्छा कह कर शिरोधार्य करते थे।

आप अपने गुरुदेव की याद में तथा आध्यात्मिक ध्यान में हर समय खोये हुए रहते थे तथा सांसारिक भावनाओं को सदा ही भूले हुए रहते थे। गृहस्थ संचालन का कार्य आपकी धर्म पत्नी तथा आपके सुपुत्र श्रीमान महात्मा राधामोहनलाल जी ही देखते और करते थे। आप पूर्णतया जीवन-मुक्त थे। ऐसी दशा होते हुए भी आप पूर्ण व्यवहार कुशल थे। ब्राह्मण कुल के कोई भी महानुभाव आते तो आप उन्हें सदा ही 'पंडित जी पालागन' कह कर सम्बोधित करते थे। छोटे बड़े सबसे उनके अनुरूप ही वार्ता करना आपकी विशेषता थी।

अध्यात्म के गूढ़ तत्वों को भी इतनी सरल भाषा में समझा देते कि बड़े-बड़े विद्वान आश्चर्यचकित रह जाते। अधिकारियों को अध्यात्म की ऊंची से ऊंची दशा पर अपनी शक्ति से पहुंचा कर समझा देते कि यह अमुक स्थान तथा अवस्था है इसे समझ लीजिए। आप के दरबार में एक बार भी यदि कोई पहुँचा तो अध्यात्म का संस्कार लिये बिना नहीं लौटा।

मुझे अपने विद्यार्थी जीवन (1925-1930) में कई वर्ष श्रीमान चच्चा जी महाराज की सेवा में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् भी उनकी सेवा में समय-समय पर जाता रहा। परन्तु श्रीमान लालाजी महाराज की सेवा में रहने का अधिक सुअवसर मुझे दुर्भाग्यवश नहीं मिला। गुरुदेव श्रीमान लालाजी महाराज के सन् 1931 में निर्वाण के बाद लगभग 16 वर्ष तक आप सारे सत्संग परिवार का

अध्यात्म से सिंचन करते रहे तथा मेरा सम्पर्क आप से ही पूर्ण रूप से बना रहा। मुझे इस मार्ग में सारा मार्ग दर्शन आप ही से मिला और आज भी मिलता है।

प्रथम दर्शन

टोंक (राजस्थान) से सन् 1925 में हाई स्कूल पास करके मैं कानपुर सनातन धर्म कॉलेज में पढ़ने गया। मेरे भाई साहब बाबू आनन्द स्वरूप जी वहां रहते थे श्रीमान चच्चा जी महाराज की सेवा में जाने वालों में एक पुराने अभ्यासी थे। अक्टूबर 1925 में एक संध्या को वे मुझे भी अपने साथ ले गए और श्रीमान चच्चा जी महाराज के सामने बैठा दिया। थोड़ा सा परिचय दे दिया। श्रीमान जी मुझ से थोड़ी बात करके अपने परिवार के सदस्यों, भाई साहब आदि से बातें करते रहे। लौटते समय मुझसे कहा जब फुरसत हो कभी-कभी हमारे पास आ जाया करो। मेरी आयु उस समय केवल 17 वर्ष की थी। श्रीमान के विषय में मैं क्या समझ सकता था। परन्तु कुछ आकर्षण (खिंचाव) के कारण उनके पास जाने लगा। कुछ दिनों बाद आपने मुझे अभ्यास बतलाया और कराया। आज्ञा दी कि इसे रोज प्रातः कर लिया करो। उनकी दया कृपा से ये अभ्यास तभी से चल रहा है और जीवन पर्यन्त चलता रहेगा।

भाई रोया करो

श्रीमान लाला जी महाराज के समय की घटना है। एक बार फतेहगढ़ में श्रीमान चच्चा जी महाराज कमरे में विराजे थे। भाई लोग उन्हें घेरे उनकी बातों पर मुग्ध मस्ती में झूम रहे थे। एक भाई ने श्रीमान चच्चा जी से प्रश्न पूछ लिया "चच्चा पूजा में तो जी बिलकुल नहीं लगता, कुछ ऐसा गुर बतलाइये जिससे मन लगने लगे।" चच्चा जी महाराज ने तुरन्त ही उत्तर दिया, "यह तो बहुत सरल है-भाई रोया करो।" उन भाई ने कहा "चच्चा हमें तो रोना भी नहीं आता" तो चच्चा ने कहा "उसमें क्या है, तुम्हारा कोई अपना मर जाता है तो रोते नहीं हो, वैसे ही रोओ।"

भाई को गुर मिल गया। रोने का अभ्यास आरम्भ हो गया। एक दिन वे मकान के ऊपर के कमरे में बन्द होकर रो रहे थे कि उनकी आवाज जोर से

निकलने लगी और घर वालों का ध्यान उधर आकृष्ट हो गया। कमरे के किवाड़ भड़भड़ाये गये तब कहीं देर से उन्होंने किवाड़ खोले।

उनके इस व्यवहार की शिकायत श्रीमान लाला जी महाराज के पास पहुँची। उनसे बुलाकर पूछा गया तो उन्होंने श्रीमान चच्चा जी महाराज के बतलाये गुर का भेद खोल दिया। श्रीमान लाला जी महाराज को इस बात पर कुछ हंसी आ गई और फ़रमाने लगे, "नन्हे को ऐसी ही बातें सूझा करती हैं।" उन रोने वाले भाई पर उस दिन से कुछ विशेष कृपा भी हो गई।

श्रीमान चच्चा जी महाराज को उन भाई ने स्वयं ही जाकर यह घटना सुनाई और कहने लगे, "चच्चा आपने ऐसी तरकीब बतलाई कि हमारा काम बन गया। परन्तु आपको थोड़ी डांट पड़ गई।"

श्रीमान चच्चा जी महाराज फ़रमाने लगे-

"कबीर हँसना दूर कर-रोने से कर प्रीत।
बिन रोये कैसे मिले, प्रेम पियारा मीत॥
हंस हंस कंत न पाइयाँ, जिन्ह पाया तिन्ह रोय।
हंसी-हंसी जो पिउ मिले तो कौन दुहागिन होय।

भाई तुम्हारा काम तो हो गया हमें डांट पड़ी सो पड़ी-उसकी चिन्ता न करो।"

रोना और गिड़गिड़ाना, दीनता आधीनता की निशानी है। चच्चा जी महाराज के अनुसार ये दोनों ही बातें भगवान को प्रिय हैं और हमें भगवान के निकट ले जाने वाली हैं।

काँग्रेस का 1925 का अधिवेशन

पूज्य चच्चा जी महाराज के पास बैठने तथा उनका वार्तालाप सुनने का अवसर सब सत्संगी भाइयों को स्वतंत्रता के साथ मिलता था। कर्नलगंज वाले

मकान में बहुत छोटा सा कमरा था परन्तु जो लोग आते, पूज्य चच्चा जी सब को अपने पास बुलाते जाते और सब लोग खूब सट कर बैठ जाते। जब कानपुर में दिसम्बर सन् 1925 ई० में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ था, तब बहुत से भाई लोग बाहर से आये थे। सब उसी कमरे में ठहरे थे और रात को भी वहीं खूब सट कर सोते थे। जाड़े का मौसम था ही। श्री पूज्य चच्चा जी महाराज भी सबके साथ ही उसी कमरे में जमीन पर सोते थे, जब लोग जागते तो देखते कि किसी का पैर पूज्य चच्चा जी के पैर के ऊपर पड़ा है तो किसी का हाथ पर। इस सादगी और सामान्य भाव से रहते थे कि जिससे किसी देखने वाले को गुरु और शिष्य के सम्बन्ध का पता ही नहीं चलता था। परन्तु प्रत्येक भाई के हृदय में पूज्यपाद श्री चच्चा जी महाराज के प्रति अपार श्रद्धा एवं विशेष अनुराग था।

संत महात्माओं का सत्संग

एक बार की घटना है कि श्री चच्चा जी एक गाँव के बाजार में पहुँचे, बिक्री हो रही थी। शाम का समय था। जब चिराग जलने को हुए एक मस्त फकीर झोला लिए बाजार में आये। सब तरफ से कुँजड़े कहने लगे, "देखो आज किस पर मुसीबत आती है।" फकीर एक सब्जी वाली की दूकान पर रुके उसे अपना झोला और एक पैसा साग के वास्ते दिया। उसने एक पैसे का साग झोले में रख दिया। इसके बाद वह लगभग 1 घण्टे तक हुज्जत करते रहे। अरे भाई थोड़ा और दे दो, थोड़ा और दे दो। यही, बार-बार कहते रहे, फिर झोला उठा कर चल दिये। श्री चच्चा जी उनके पीछे हो लिये। लगभग एक मील चलकर फकीर अपनी कुटिया में पहुँचे। पूज्य चच्चा जी को देखकर उन्हें प्रेम से बैठाया खातिर की और फिर रूहानी दावत शुरू हो गई। बड़ा आनन्द रहा।

चच्चा जी ने अन्त में कहा-महाराज ! यहाँ यह हालत और वहाँ वह दशा। उन्होंने जवाब दिया-क्या करूँ ? यदि इस तरह न रहूँ तो पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाये-कहीं कोई मुकदमा जिताने को कहता है, कोई पुत्र माँगता है कोई धन माँगता है इत्यादि। सभी लोग आकर घेरने लगेंगे, फिर तो मेरा यहाँ रहना मुश्किल हो जायेगा।

ठीक यही हाल था पूज्य चच्चा जी का । तहसील अलीगढ़ जिला फर्रूखाबाद में 27 वर्ष तक रहे, पर कोई न जान सका वे राम-नाम भी जानते हैं । मकान के बाहर दरवाजे पर एक चारपाई पर बैठे रहते थे ओर हुक्का बराबर चलता रहता था । दिन भर के बाद शाम को पैसे सवा पैसे के चने या दूध लेते थे, रात को भी यहीं पड़े रहते थे । उन दिनों आरायज नवीसी करते थे । जो कुछ मिला रास्ते में बच्चों को ही बँट जाता था; सैकड़ों रुपए मुवक्किल लोग इनके यहाँ रख जाते और जब चाहते उठा ले जाते थे । घर बिना ताला कुंजी के वैसा ही खुला पड़ा रहता था । लोग कहते, जो उनका मुँह सुबह उठ कर देख लेगा, उसे उस दिन खाना नहीं मिलेगा । ऐसा लोगों से बचने के लिए स्वयं चच्चा जी ने माहौल बना रखा था ।

दूसरी घटना

एक बार पूज्य चच्चा जी ट्रेन से कहीं जा रहे थे । ट्रेन अकस्मात ही एक जंगल में रुक गई और एक आदमी उतर कर जंगल की ओर चल दिया । चच्चा जी भी उतर कर उसके पीछे हो लिये । काफी घने जंगल में जाकर वह एक झाड़ी में कूद कर छिप गया । यह सदा सुहागिन था (यह एक संप्रदाय है जिसके साधु स्त्री-वेष में रहते है) । चच्चा जी भी कूदकर अन्दर पहुंच गए-एक तरफ को सिमटते हुए उसने कहा- "उइ ! मरदुआ कहाँ से ?" (यह मर्द कहाँ से आया । संतों की भाषा में पूर्ण संत को मर्द कहा जाता है) । चच्चा जी ने उत्तर दिया-"मरदुआ हो तब ना ?" तब उसने कहा, "अच्छा आओ गुइयाँ आओ बैठ जाओ ।" दोनों बैठ गये । रूहानी दावत शुरू हो गई, पहले उसकी तरफ से खातिरदारी हुई । बड़ा आनन्द रहा । फिर उसने चच्चा जी से दरख्वास्त की । आँखें मिंच गईं और पूजा आरम्भ हो गई । थोड़ी देर बाद आँख खुलने पर उसने कहा- "गुइयाँ खूब रही ।"

फिर चच्चा जी को बताया यह तो बड़ा घना जंगल है, स्टेशन बहुत दूर है, तुम आँखें बन्द करो । चच्चा जी ने आँख बन्द की, और जब आँखें खोली तो अपने आपको स्टेशन पर पाया ट्रेन खड़ी थी, बैठ गए और ट्रेन चल दी । लगता है उनकी प्रतीक्षा में ट्रेन खड़ी थी ।

एक बार श्री चच्चा जी महाराज कुम्भ के अवसर पर प्रयाग गये हुये थे ।

साथ में बहुत से सत्संगी भाई भी थे। एक दिन डेरे के अन्दर सब सज्जन बैठे हुए थे कि एक सन्यासी जी आए। कुछ देर तक खड़े देखते रहे और कहा, "तुम में कौन महात्मा है ?" उनके दो-तीन बार पूछने पर श्री चच्चा जी ने कहा, 'ये सब महात्मा हैं।' वे सन्यासी जी हैरान होकर चल दिये। थोड़ी देर बाद फिर लौट कर आये और लगभग एक घण्टा बैठे रहे। आँखें भी बन्द की और फिर चलते समय कहने लगे, भाई खूब छिपाते हो तथा प्रसन्न होकर चले गये।

शिक्षा का तरीका

पूज्य चच्चा जी महाराज के शिक्षा देने का ढंग अनोखा था। वे शिष्टाचार विनम्रता आदि अन्य व्यवहार की शिक्षा विचित्र ढंग से देते थे। गुप्त रूप से काम करते थे तथा कभी किसी की आलोचना नहीं करते थे। न किसी को किसी बात के लिए प्रत्यक्ष में मना करते थे। साधारण उपदेश में सब बातें कह जाते जिसे केवल वही व्यक्ति समझ पाता जिसके सम्बन्ध में बात कही जाती थी। उनके पास चिन्ता, अशान्ति, द्वेष आदि से पीड़ित जो भी व्यक्ति जाता, उसके सारे क्लेश दर्शन मात्र से वैसे ही दूर हो जाते-जैसे भगवान भास्कर के प्रकाश से सारा अन्धकार दूर हो जाता है। लोग अनेकों शंकायें तथा प्रश्नों को लेकर उनके पास जाते और बिना पूछे ही उनके प्रश्न हल हो जाते।

इसी सम्बन्ध की एक घटना है। एक बार एक नये सत्संगी भाई आये। उनको आते हुये आठ दिन हुये थे। एक दिन उनके मन में आया कि जो झगड़ा उनका उनके बहनोई जी से कई वर्षों से चला आ रहा है, वह समाप्त हो जाये और उनसे मेल हो जाये। सौभाग्य से होली के दिन थे। वे अपने बहनोई के घर में पहुँचे। उनके पैर छुये और होली मिले। वर्षों का द्वेष क्षण मात्र में दूर हो गया। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। यह सब पूज्य चच्चा जी महाराज का ही प्रताप था।

"उमा न कछु कपि कै अधिकाई,
प्रभु प्रताप जो कालहिं खाई।"

पूज्य चच्चा जी कहा नहीं करते, कर दिया करते थे। इसी प्रकार लोगों की

बुरी आदतें उनके पास बैठने से ही चली जाती थीं। ऊपर से तो वे बड़ी दिल लुभाने वाली लच्छेदार बातें किया करते और अन्दर ही अन्दर हृदय के मैल को साफ करके निर्मल बना देते थे। यह बात बड़ी कठिनाई से कहीं-कहीं देखने में आती है।

सत्संगियों में से एक श्रीमान को मदिरापान की आदत थी और धनाढ्य होने के कारण मदिरा-पान में इच्छानुसार धन भी व्यय किया करते थे। एक दिन पूज्य चच्चा जी से एकान्त में बात हुई। उन सज्जन ने कहा कि यह मेरा बहुत बुरा व्यसन है। अब आगे से मद्यपान न करुंगा। किन्तु 10-15 दिन बाद एक दिन उन्होंने फिर मदिरा पी ली। सत्संग के बाद जब सब लोग चले गये और वह अकेले रह गये, तो उनकी फिर पूज्य चच्चा जी से बातचीत हुई। उन्होंने चच्चा जी के समक्ष अपनी गलती को स्वीकार किया और भविष्य में फिर मद्यपान न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। इसके बाद 8-10 दिन बीत जाने पर एक दिन फिर उन्हीं सज्जन की एकान्त में पूज्य चच्चा जी से वार्ता हुई। उन्होंने कहा, मेरी मदिरा तो छूट नहीं सकती, मैंने कल फिर पी ली थी। अतः मैं अब इसे छोड़ने का प्रयत्न भी न करुंगा और कल से यहाँ भी नहीं आऊँगा। इस पर पूज्य चच्चा जी महाराज ने कहा, मैंने तो आपको कभी शराब पीने को मना नहीं किया। आपने स्वयं ही छोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। इसमें मेरा क्या अपराध है जो कल से आप नहीं आयेंगे। आप मदिरापान कीजिये, पर मुझ पर इतनी कृपा कीजिये कि मुझे बतला जाया कीजिये कि आज आपने कितनी पी है। इस बात को उन्होंने स्वीकार कर लिया। इसके बाद वे नित्यप्रति जाते समय चच्चा जी के कान में कुछ कह जाते थे। चार-पाँच दिन तक ऐसा होता रहा। फिर पच्चीस दिन या एक महीने बाद उन्होंने एक दिन पूज्य चच्चा जी से कहा कि आज मैं आपसे लड़ने आया हूँ। पूज्य चच्चा जी ने कहा, भाई साहब ! मुझसे क्या अपराध हुआ। उन्होंने बताया-लगभग एक मास हो गया, मैंने मदिरा-पान नहीं किया। मुझको उसकी याद भी नहीं आती। मुझे उसकी इच्छा भी नहीं होती, अपितु एक प्रकार की घृणा हो रही है। जब आप इतनी आसानी से मेरा दुर्व्यसन छुड़ा सकते थे, तो आपने मुझको इतना परेशान क्यों किया। पूज्य चच्चा जी ने कहा, भाई आपने अपने आप ही प्रतिज्ञा की थी। जब आप उसको पूरा न कर सके और हार मान ली तो मैंने सोचा कि मैं ही उसके दरवाजे पर गिड़गिड़ा कर आपके लिये प्रार्थना करुँ। धन्यवाद है उस मालिक को, उसने मेरी प्रार्थना स्वीकार

कर ली। इसी प्रकार पूज्य चच्चा जी बड़े-बड़े काम करते, पर कभी नहीं कहते कि मैंने यह काम किया।

मुंशी जी

पूज्य चच्चा जी के पड़ोस में एक मुंशी जी रहते थे। ये बहुत दीन थे। इनके बाल बच्चे भी थे। कभी-कभी फाका भी करना पड़ता था। पूज्य चच्चा जी महाराज इनको सहायता भी दिया करते थे और दूसरों से भी दिलवाया करते थे। तंग आकर एक दिन सुबह ये गंगा जी गये। कपड़े उतार कर गंगा जी में घुसे और डूब मरने का इरादा किया। इतने में देखा कि चच्चा जी डंडा लिये आ रहे हैं और डाँट कर कहते हैं-क्या अनर्थ करते हो, पानी से बाहर निकलो ? डाँट के मारे वह घबरा गये और पानी से बाहर निकल आये। जल्दी में कपड़े तथा जूते हाथ में उठा कर भागे। स्वयं भागते जाते और पीछे देखते जाते कि पूज्य चच्चा जी महाराज डंडा लिये आ रहे हैं। जब नगर के समीप आ गये तो देखा कि चच्चा जी नहीं हैं। मुंशी जी ने कपड़े आदि पहने और सीधे चच्चाजी के मकान पर आये। देखा कि आप आराम से बैठे हुक्का पी रहे हैं और सत्संगियों से बातचीत कर रहे हैं। इनको देख कर बहुत हँसे और पूछा कहिए मुंशी जी ! मिजाज अच्छा है। उन्होंने सब किस्सा अर्ज कर दिया। आप हँसने लगे। मुंशी जी ने सत्संगियों से एकान्त में पूछा, तो ज्ञात हुआ कि आप प्रातः काल से यहीं बैठे हैं और कहीं नहीं गये।

सिद्धि का प्रदर्शन

एक बार श्री पूज्य चच्चाजी महाराज के पास एक पण्डित जी आये। उनको एक सिद्धि प्राप्त थी, जिसके द्वारा जब चाहें जिस किसी की ज़ुबान बन्द कर देते थे। वह व्यक्ति फिर बोलने में असमर्थ हो जाता था। पण्डित जी ने अपनी शक्ति का प्रयोग पूज्य चच्चा जी महाराज पर भी किया। थोड़ी देर तक वह चुप बैठे रहे। फिर उन्होंने कागज पर लिख कर दिया कि कृपा करके आप मेरी ज़ुबान खोल दें। पण्डित जी अहंकार के मद में डूबे हुए थे। उन्होंने पूज्य चच्चा जी महाराज की बात हंस कर टाल दी। जब वे नहीं माने, तो पूज्य चच्चा जी महाराज बात करने लगे। इसको देखकर पण्डित जी को आश्चर्य हुआ और उठ कर चले गए। कुछ समय बाद

पण्डित जी पूज्य चच्चाजी के पास आए और पैर पकड़ कर फूट-फूट कर रोने लगे। कहा, "मैं तो लुट गया। मेरी शक्ति छिन गई जिसके द्वारा मैं कमाने का धन्धा किया करता था। अब मैं क्या करुँ ?" सन्त दयालु होते हैं। फिर वह तो परम सन्त थे। उनको दया आ गई । उन्होंने उनकी शक्ति को वापस लौटा दिया और कहा, "अहंकार अच्छा नहीं होता।"

ढोंगी सन्यासी

एक सन्यासी जी अपने चेले के साथ पूज्य लाला जी के पास आये। एक दिन बाहर बरामदे में पूज्य चच्चा जी का हंसी मजाक का दरबार जारी था, वहीं सन्यासी जी के चेले भी बैठ गये।

कुछ बातों में प्रसंग में पूज्य चच्चा जी ने कहा- "ये सन्यासी नहीं हैं, गलत कहते हैं।" उन्हें यह बात बड़ी बुरी लगी। उन्होंने इसकी शिकायत अपने गुरु जी से की और फिर उनके गुरु जी ने बात पूज्य लाला जी से कह दी। पूज्य लाला जी ने चच्चा जी बुलाया और पूछा-"क्यों ? आपने इनसे कह दिया कि यह सन्यासी नहीं हैं ? झूठ बोलते हैं ?"

चच्चा जी ने सन्यासी जी के चेले को सम्बोधित करते हुए कहा कि गृहस्थ के तो सिर्फ एक पत्नी होती है, परन्तु आपके तो दो पत्नीयाँ हैं। सब लोग आश्चर्य से चच्चा जी की तरफ देखने लगे। चच्चा जी ने कहा "आपकी एक पत्नी जो सदैव आपके साथ रहती है और वह जैसा चाहती है, आपसे करवाती है वह है-आपका मन और आपकी दूसरी पत्नी जो 5 हाथ की है वह आपके घर पर बैठी है। इस पर आप अपने को सन्यासी कहते हैं ?" सब की विस्मित आँखें अब सन्यासी जी के चेले पर थी, जिनका मुँह सूख गया था, गला रूँध गया था, हवाइयाँ उड़ रही थी और पसीना छूट रहा था। चच्चा जी इतना कह कर बाहर चले आये और सन्यासी जी ने अपने चेले को डाँटना शुरू कर दिया-"क्यों रे ! तूनें तो कहा था, तेरे स्त्री नहीं है..।" वह चेला अपनी स्त्री को छोड़कर सन्यासी बन गया था।

भक्तों की संभाल

श्री पूज्य चच्चा जी महाराज के एक भक्त का तार आया कि उनका लड़का सख्त बीमार है। ट्रेन छूटने का समय अति निकट था, इसलिए श्री चच्चा जी महाराज शाम को बिना भोजन किये ही वहाँ को चल दिये। इनके साथ एक सत्संगी भाई भी थे। ट्रेन उस दिन कुछ लेट हो गई। भक्त प्रतीक्षा करते-करते सो गये। जब ये लोग उनके घर पहुँचे तो दरवाजा बन्द था। श्री चच्चा जी महाराज ने सत्संगी भाई से कहा कि आवाज मत दो और मत जगाओ। बेचारे तीमारदारी में जागते रहे होंगे-नींद लग गई है। आराम कर लेने दो। अतः दोनों साहब बाहर ही चबूतरे पर रात भर वैसे ही पड़े रहे। जब सुबह भक्त ने दरवाजा खोला तो इन लोगों को देखकर अवाक रह गये।

पूज्य चच्चा जी दुर्गुणों को सद्गुणों में बड़ी ही सरलता से एवं सुगमता से परिणत कर देते थे। उनका एक बड़ा सुन्दर उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। एक सत्संगी भाई को समाचार पत्रों के पढ़ने का व्यसन था। उन दिनों द्वितीय महायुद्ध चल रहा था। पूज्य चच्चा जी ने कहा, भाई ! मुझे युद्ध के समाचार एकत्रित करके सुनाया करो। अतः वे सत्संगी जी समाचारों को एकत्रित किया करते। इस प्रकार उन्हें पूज्य चच्चा जी का सदैव स्मरण रहता। पूजा के बाद समाचार पूज्य चच्चा को सुनाते और सुनाने के बाद भूल जाते। कुछ दिन बाद उनका व्यसन जाता रहा।

परम पूज्य चच्चा जी महाराज किस्से और कहानियाँ बहुत सुना करते थे। प्रत्येक व्यक्ति से कहते, भाई ! कोई कहानी सुनाओ। रात को जब विश्राम को जाते तब भी लोगों से कहानियाँ सुना करते। कहानियों के प्रकार का कोई निषेध न था। कहानी चाहे धार्मिक पुस्तक की हो या उपन्यास की हो। एक मास्टर जी पूज्य चच्चा जी को सोते समय बहुत दिनों तक जासूसी उपन्यास सुनाया करते थे। पूज्य चच्चा जी ऐसे सुनते मानों बड़े तन्मय होकर सुन रहे हों। कभी-कभी बीच में प्रश्न भी कर देते। वास्तव में यह किस्से बाजी निरी किस्से बाजी ही नहीं होती थी अपितु जब साधक का मन किस्से में लगा होता था, उसी समय पूज्य चच्चा जी अपनी

आत्मिक शक्ति से उसके हृदय के मैल को साफ कर देते थे।

कव्वाली

एक बार बरेली में चिश्ती सूफियों का जलसा हो रहा था और कव्वाली हो रही थी। बड़ा समां बंधा हुआ था। खूब स्वर उठाये जा रहे थे। पूज्य चच्चा जी भी वहीं पहुँच गए। जैसे ही कव्वाली समाप्त हुई चच्चा जी ने भी ऊंचे स्वर में एक ग़ज़ल शुरू कर दी-

न ख्वाहम दौलते दुनिया, न जन्नतरा तलब गारम ।
दिलो जाँ मी फरोशम, दर्दें इश्क रा खरीदम ॥
न पेशेमन इबादत शुद, न पोशीदम रियाज तरा ।
नजर बर फज़ल तो दारम, सरापा मन गुनह गारम ॥

अर्थ- न मैं सांसारिक धन और वैभव की कामना रखता हूँ और न स्वर्ग की आकांक्षा है। दिल और जान को बेचता हूँ और उसके बदले में प्रेम की पीड़ा का ग्राहक हूँ। मुझसे न तो भक्ति बन सकी है और न मैंने तप ही किया है। मैं सिर से पैर तक पापी हूँ। तेरी दया और कृपा का भरोसा है।

इतना सुनते ही शाह साहब भाव में इतने भर गये कि तड़प कर उठे और चच्चा जी का हाथ पकड़ कर उन्हें अपने पास ही बैठाया। चिश्तियों के यहाँ जिसे गुरु पदवी की इजाजत देते और अपना उत्तराधिकारी बनाते हैं उसे रुमाल, टोपी, चादर आदि कोई वस्तु देते हैं। जब जलसा खतम हुआ इसी प्रथा के अनुसार उन्होंने चच्चाजी को एक रुमाल पेश किया।

चच्चा जी ने उन्हें निम्नलिखित शेर कहते हुए रुमाल वापस कर दिया-

"रुमाल उसको दीजिये जो मुस्तमंद हो,
यह फकीर तो अपनी ही कमली में मस्त है ॥"

रात को जागते रहना

एक सत्संगी भाई ने बताया कि वे श्री पूज्य चच्चा जी महाराज के साथ फतेहगढ़ के भण्डारे में गये थे। वहाँ पहुंचने पर श्री पूज्य चच्चा जी महाराज घर पर ठहरे और सब सत्संगी भाई समाधि पर ठहरे। जनाब पेशकार साहब महात्मा प्रभु दयाल जी इन सत्संगी भाई से अधिक प्रेम करते थे ये उन्हीं के साथ समाधि पर ठहरे। सुबह श्री पूज्य चच्चाजी महाराज ने इन सत्संगी भाई से पूछा, "रात कहाँ रहे ?" इन्होंने उत्तर दिया, "समाधि पर रहा।" श्री पूज्य चच्चाजी ने शाम होने से पहले ही इन सत्संगी भाई से कह दिया आज यहीं सोइयेगा। अतः ये रात को श्री पूज्य चच्चाजी के पास ही सोये। रात को श्री पूज्य चच्चाजी महाराज 11-12 बजे लेट गये। ये सत्संगी भाई भी सो गये। रात को 1 बजे आँख खुली तो इन्होंने देखा कि श्री पूज्य चच्चा जी महाराज चारपाई पर बैठे है ये भी उठ कर बैठ गये। थोड़ी देर बाद श्री पूज्य चच्चा जी महाराज ने देखा और कहा-आप क्यों बैठे हैं ? इन्होंने पूछा-महाराज जी ! क्या आपके कोई तकलीफ है ? चच्चा जी कहने लगे-नहीं भाई और लेट गये। इन सत्संगी भाई की 3 बजे फिर आँख खुली। इन्होंने श्री चच्चाजी को फिर बैठे देखा। ये भी उठ कर बैठ गये। थोड़ी देर बाद श्री महाराज जी ने फिर पूछा कि भाई आप क्यों बैठे हैं। मेरे तो ज्यादा देर लेटने में दम फूलने लगता है, इसलिए कभी लेट जाता हूँ कभी बैठ जाता हूँ। अतः सत्संगी भाई को लिटा दिया और आप बैठे रहे। सत्संगी भाई ने देखा कि श्री पूज्य चच्चा जी महाराज रात भर जागते रहे। जब सबके जागने का समय हुआ तब 4 बजे लेट रहे और फिर सबके साथ 5 बजे उठ बैठे। यह थी श्री पूज्य चच्चा जी की रात चर्या। ये सत्संगी भाई पूज्य चच्चा के पास दो रातें रहे और इन्होंने देखा कि श्री पूज्य चच्चाजी महाराज रात भर भाइयों के लिए इसी तरह दुआ माँगते और गायबाना तवज्जह देते रहे।

आप कहा करते थे "जिसने निरी दुनिया देखी उसकी हुई थू-थू और जिसने निरा ईश्वर देखा उसकी हुई फू-फू"।

दुनियाँ और उकवा (लोक-परलोक) दोनों ही ठीक-ठीक निभाना चाहिये। एक का न होना चाहिए। यही सांख्य योग है कि दुनियाँ में रहते हुये दुनियाँ का सब काम करते हुये दुनियाँ से अलग रहना। आप सदैव बड़ी बात को थोड़े शब्दों में कह दिया करते थे। शब्द सार से भरे होते थे।

आप कहा करते थे-

"मन लागत लागत लागत है, भय भागत भागत भागत है,
बहुत दिनों का सोया मनुवा जागत जागत जागत है ।"

आप फ़रमाया करते थे कि जो जाहिर हो गया वह दो कौड़ी का हो गया। फ़क़ीरी छुपाने की चीज है।

कबीर दास जी ने भी कहा है-"धरमदास तोहें राम दोहाई। सार भेद बाहर ना जाई।" और फकीर सन्त भी यही कहते थे कि हमारी मजलिस मजलिसे आम नहीं हमारी मजलिस मजलिसे खास है। यह तो प्रेम का रास्ता है और प्रेम दिल की चीज है। इसमें दिखलावे के लिए कोई स्थान नहीं।

"प्रेम गली अति साँकरी, जामें दुइ न समाय"

जनाब लाला जी के जीवन में अगर कोई बात चच्चा जी से पूछता तो आप फ़रमाते कि जनाब लाला जी से पूछो वही मालिक हैं-हम तुम तो भाई-भाई हैं। जनाब लालाजी के शिष्यों का बड़ा सम्मान करते और उनको भाई समझते तब तालीम का सब काम चच्चा जी ही किया करते थे।

आप कभी किसी पर गुस्सा नहीं करते थे। आप फ़रमाते थे कि फकीर से गुस्सा पूछ कर आता है और अगर किसी को गुस्सा आवे तो तीन दिन से ज्यादा न रहना चाहिए वरना संस्कार बन जाते हैं। एक समय आपने झूठ-मूठ गुस्सा करके दिखलाया-एक मेहतर था जो कि ठीक काम नहीं करता था। उस पर आपने इतनी जोर से डांट बतलाई कि वह भागते ही बना। आपने फ़रमाया कि मैं गुस्सा थोड़े ही हुआ था। जरा उसको डांट दिया था कि ठीक काम किया करे। फिर बड़ी प्रसन्नता से बातचीत करने लगे।

आप परमात्मा की याद में इतने भूले रहते थे कि एक समय आप सीतापुर गये और जिनके यहाँ जाना था उनका नाम भी भूल गये तो आपने फ़रमाया कि हमने बाजार में पूड़ियाँ खाई और फिर रेल में सवार हो गये। फिर तो जब वहाँ से

चल दिये तब उनका नाम याद आ गया।

चच्चा जी ऐसे ही मस्त फकीर थे कि उनको अपनी सुध-बुध ही न थी और दूसरों को भी मस्त कर दिया करते थे। उनके पास जाने से किसी बात की चिन्ता ही नहीं रहती थी मालूम होता था सब चिन्तायें उन्होंने हर ली।

आप जब कोई पुस्तक देखा करते तो पढ़ते-पढ़ते आप रोने लगते और प्रेम में आकर आँसू बहाया करते। आपको कभी-कभी दर्द की शिकायत होती थी तो बहुत सहन करते थे। जब ठीक हो जाते तो कहा करते कि जब वह परमात्मा हँसाता है तब हंस देता हूँ और जब रुलाता है तब रो देता हूँ। हर हालत में परमात्मा को धन्यवाद देते।

एक समय आपके भ्राता महात्मा रामचन्द्र जी (लालाजी साहब) किसी सत्संगी के घर पधारे तो उस सत्संगी भाई की आदत थी कि बहुत खिलाया करते थे। जनाब लाला जी बस-बस करते तब भी वह एक आध पूरी और परस देते थे। आखिर तंग आकर लाला जी खाना छोड़ कर उठ आये और तीन दिन तक उनके मकान पर ठहरे मगर भोजन नहीं किया।

एक समय उन सत्संगी भाई के यहाँ कोई काम था। जनाब चच्चा जी वहाँ गये और इनके साथ भी वही हरकत की तो चच्चा जी ने खाना आरम्भ किया। यहाँ तक कि 60 आदमियों का भोजन तैयार हुआ था वह सब खा गये। इधर खाना परसा गया उधर गायब। फिर तो सत्संगी ने बाजार से मंगाना आरम्भ किया। जब पैसे भी समाप्त हो गए तो बहुत परेशान हुए। तब उन्होंने जनाब चच्चा जी से क्षमा माँगी। चच्चा जी महाराज ने कहा जाओ उस कोठरी में तुम्हारा खाना धरा है।

इसके बाद जब जैसे ही चच्चा जी लौट कर घर आये तो लाला जी महाराज को सब मालूम था ही। वे किसी से कह रहे थे कि ऐसा भी हो सकता है कि कितना ही खाना कोई खिलाये व खाना अदृश्य हो जाये। तब लाला जी बड़े अप्रसन्न हो गये और कहा कि कान पकड़ो और उठो बैठो, क्या किसी की इज्जत लेना है ? चच्चा जी ने तीन दफा कान पकड़े और उठे बैठे।

ख़्वाजा साहब, अजमेर

एक समय ठाकुर शिव नायक सिंह जी को राजस्थान जाने का अवसर मिला। आप श्री चच्चा जी के पास होते हुये उधर पहुँचे। श्री चच्चा जी महाराज ने उनको चलते हुये कहा कि जब तुम अजमेर जाना तो ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती साहब की दरगाह पर हो आना। जब ठाकुर साहब को अजमेर पहुंचने का अवसर मिला तो स्टेशन पर ही जनाब ख़्वाजा साहब मय अपने भानजे के उनको मिलने के लिए आये और बाद दुआ व सलाम जनाब ख़्वाजा साहब ने फ़रमाया कि तुम को हमारे यहाँ मेहमान भेजा गया है इसलिए हम आये हैं। जब सदर दरवाजे पर पहुँचे तो कहने लगे कि यहाँ से हमारा इलाका शुरू होता है।

ठाकुर साहब ने उनसे कहा मैं कल हाजिर होऊंगा।

अगले दिन ठाकुर साहब दरगाह पहुँचे तो वहाँ पर कव्वालियाँ हो रही थीं। ठाकुर साहब कुछ देर तक वहाँ पर बैठे रहे और ख़्वाजा साहब और उनके भानजे को भी वहीं पर बैठे देखा।

इसके बाद दरगाह को देखा तो वहाँ पर एक छोटी सी कबर देखी तो लोगों से पूछा कि यह कबर किसकी है। लोगों ने बतलाया कि यह कबर उनके भानजे की है।

जब ठाकुर साहब अजमेर से वापिस आ रहे थे तो ख़्वाजा साहब उनको छोड़ने के लिये स्टेशन पर आ गये और फ़रमाया कि अब तुम राजपूताने से वापस जा रहे हो। जब वापस आकर जनाब चच्चा जी से ठाकुर साहब की मुलाकात हुई तो सब हाल उनसे सुना तो चच्चा जी ने कहा कि ठीक है।

एक मरतबा फिर जब ठाकुर साहब को राजस्थान जाने का अवसर मिला। उस समय चच्चा जी अपने जाहिरी शरीर का त्याग कर चुके थे। दरगाह पर गये तो ख़्वाजा साहब को नहीं पाया और कहने लगे कि अब की ख़्वाजा साहब से मुलाकात नहीं हुई। इतना ख्याल करते ही ख़्वाजा साहब आ पहुँचे और फ़रमाने लगे कि कहीं

पर उर्स हो रहा है वहाँ गया था।

समाधि

इस प्रकार जन साधारण के पथ-प्रदर्शन का कार्य करते हुए आप 7 जून 1947 को बैठे आसन लिए हुए निर्वाण प्राप्त हुए। आपकी समाधि कानपुर नगर के बाहर हमीरपुर रोड पर बनाई गई। बसन्त पंचमी पर आप अपने जीवन काल में श्रीमान लालाजी महाराज का उनकी जन्म तिथि पर भण्डारा किया करते थे। वही भण्डारा बसन्त पर प्रतिवर्ष अब भी होता है। इस अवसर पर हमारे सत्संगी भाई घर तथा समाधि पर एकत्रित होते हैं। सामूहिक पूजा ध्यानादि होता है और शांति तथा प्रेम की ऐसी वर्षा होती है कि आने वाले सभी आगन्तुक उसमें सराबोर हो जाते हैं।

आपका विस्तृत जीवन चरित्र कानपुर से श्री प्रकाशचन्द वर्मा (536, आनन्द बाग पार्क, कानपुर) द्वारा प्रकाशित कराया जा चुका है। आपके एक प्रमुख शिष्य श्रीमान महात्मा शिव नारायण दास गाँधी जी ने जो आपके नित्य प्रति के उपदेश डायरी में लिख लेते थे इन सब को पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक 'पीयूष वाणी' भी इन्हीं महानुभाव श्री प्रकाशचन्द जी ने प्रकाशित कराई है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि इन परम सन्त महात्मा के दिव्य जीवन को अपने दैनिक जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। इसी में कल्याण है। आपकी समाधि हम सभी का एक तीर्थ है जहाँ कृपा धार (फ़ैज़) की इतनी वर्षा होती है कि तन बदन का होश नहीं रहता। यहाँ सभी सत्संगियों को बराबर जाना चाहिए और फ़ैजयाब होना चाहिए। इस स्थान से कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटा।

35B - हजरत जनाब महात्मा डॉ॰ कृष्ण स्वरूप साहब (जयपुर)

परम संत महात्मा डॉ॰ कृष्ण स्वरूप साहब का जन्म भोगांव में 22 दिसम्बर 1879 को हुआ । आपके पिता श्रीमान उलफ़त राय साहब श्रीमान लालाजी महाराज के खास चाचा थे । कहा जाता है कि आप जन्म जात संत थे । अतएव गुरु कृपा तथा पूर्व जन्म के सुसंस्कारों के कारण आपको 23 वर्ष की आयु में ही गुरु पदवी प्राप्त हो गई । उसके पश्चात् आप निरंतर रूहानियत की बरकत अपने गुरुदेव के आदेशानुसार बाँटते रहे ।

परम संत डॉ॰ कृष्ण स्वरूप जी अपने बड़े भाई परम संत महात्मा रामचन्द्रजी साहब के पास फर्रूखाबाद में विद्याध्ययन के लिये आकर रहते थे । आप भी महात्मा जी के साथ उनके सद्गुरु परम संत मौलवी फ़ज़्ल अहमद ख़ाँ साहब के पास मुफ्ती मदरसे में उर्दू-फारसी पढ़ा करते थे । आपको बचपन में पतंग उड़ाने का बहुत शौक था । एक दिन कटी हुई पतंग को लूटने के लिये बालक कृष्ण स्वरूप जी मुफ्ती मदरसे के अहाते में अन्य बालकों के साथ पहुँच गये । उस कटी हुई पतंग का धागा परम संत सद्गुरु मौलाना फ़ज़्ल अहमद ख़ाँ साहब के हाथ में आ गया । आपने उस पतंग को पकड़ कर बालक कृष्ण स्वरूप को कहा कि "आओ यह पतंग ले लो ।" पतंग के लालच से जैसे वे मौलवी साहब के पास पहुँचे उन्होंने उन्हें पकड़ कर गोदी में बिठा लिया और बड़ी देर तक पतंग उड़ाते रहे । उसी वक्त महात्मा रामचन्द्र साहब भी उनके पास उर्दू फारसी पढ़ रहे थे । मौलवी साहब ने महात्मा जी से फ़रमाया कि "मुंशी जी, आज से ये आपके छोटे भाई हमारे हो गये ।" उसी दिन से डॉ॰ कृष्ण स्वरूप साहब का झुकाव रूहानियत की तरफ हो गया । आपके घर में आपकी माता जी परम भगवत् भक्त थीं । वे शिव जी की उपासना किया करती थीं । वे रामायण की भी बड़ी प्रेमी थीं । उन्होंने बाल्यकाल से ही बालक कृष्ण स्वरूप को कर्म-कांड व पूजा पाठ में लगा दिया था । ये भी रोज शंकर जी के मन्दिर में जाकर शंकर की मूर्ति को हज़ारों बिल्व पत्र चढ़ाया करते थे । एक दिन उन्होंने शंकर जी की मूर्ति पर कोई खराब चीज पड़ी हुई देख ली । इस पर आपके

हृदय को बड़ी चोट लगी कि यह कैसा सर्वशक्तिमान ईश्वर है, जिसमें अपने ऊपर से बुरी चीज हटाने की भी शक्ति नहीं है ? उस दिन से आपने शंकर जी पर बिल्व पत्र चढ़ाना बंद कर दिया। इस कारण आपकी माता जी ने आपकी एक बार बहुत पिटाई भी की । परन्तु आपका जी कर्मकाण्ड से ऊब गया । रामायण के सातों काण्ड आपको मुखाग्र याद थे । यही नहीं उन्हें सम्पूर्ण भगवद् गीता भी जबानी याद थी, इसीलिए वे जवानी में 'हाफ़िज़ जी' कहलाते थे । क़ुतुबबीनी यह आलम था कि नवल किशोर प्रेस लखनऊ में छपने वाली हर पुस्तक उनके पास नियमपूर्वक भेजी जाती थी। उनका पढ़ाई का यह शौक ही उन्हें आगरा मेडिकल स्कूल में ले गया।

परम संत महात्मा रामचन्द्र जी के यहाँ फरूख़ाबाद में ही आपकी शिक्षा दीक्षा हुई । जीवन के एक मुबारिक दिन परम संत मौलवी साहब ने डॉ० कृष्ण स्वरूप जी को दीक्षा देकर महात्मा रामचन्द्र जी के सुपुर्द कर दिया यह कह कर कि वे इनकी रूहानी तालीम अपनी खास तवज्जोह से पूरी कर दें । महात्मा रामचन्द्र का भी आप पर अपार स्नेह था । डॉ० साहब भी महात्मा जी को अपना सर्वस्व मानते

एक बार महात्मा जी से किसी सत्संगी भाई ने फतेहगढ़ में पूछा कि आप मथन्नी चच्चा (डॉ० कृष्ण स्वरूप जी) पर इतनी कृपा क्यों रखते हैं तो आपने मुस्करा कर फ़रमाया "वह मेरे सीने से उसी तरह चिपट कर हमेशा रूहानियत खींचता रहता है जैसे माता के स्तनों से बच्चा चिपटा रहता है।" जब डाक्टर साहब लालाजी साहब के पास फर्रूखाबाद रहते थे तो अभ्यास की ज्यादती से जलाल इतना बढ़ गया कि चेहरा व आँखें सुर्ख रहती थीं। लालाजी साहब ने हिदायत कर रखी थी कि कोई भी विशेषकर बच्चों को, उनके बिस्तर पर न सुलाया जावे क्योंकि वैसा करने से संभवतः मौत हो सकती थी। इसकी खबर जब रायपुर वाले हुजूर पूज्य फ़ज़्ल अहमद खां साहब तक पहुंची तो आप उनकी खिदमत में पैदल चलकर पहुँचे व कहते हैं 20 मील का रास्ता मात्र आधा घंटे में तय किया व सलाम अर्ज किया । वे बोले बरखुरदार यह क्या माजरा है ? हम ये क्या सुन रहे हैं ? उन्होंने अपने पास रखे अमरूद में से एक काश (टुकड़ा) काट कर डाक्टर साहब को खाने के लिए दी । वे कहते थे कि उसे खाते ही उन्हें यह अहसास हुआ कि किसी ने

सैकड़ों घड़े ठंडा पानी उनके ऊपर डाल दिया हो और शीतलता छा गई व वह ज़लाली हालत भी शान्त हो गई।

परिणाम यह हुआ कि जब मैट्रिक पास करके आप आगरे के मेडिकल स्कूल में गये, उसके पूर्व ही आपको (रूहानी) इजाजत दे दी गई थी। जब आप मेडिकल स्कूल आगरे में पढ़ा करते थे तो सवेरे उठ कर नित्य नियम किया करते थे। आपका साथी (रूम मेट) आपकी खिल्ली उड़ाया करता था व परेशान किया करता था। एक दिन रात को, जब उसने बहुत शैतानी की तो आपने उसे तवज्जोह देनी शुरू की। वह अपनी चारपाई पर छटपटाने लगा। उसका दिल दब कर मरणासन्न हो गया। उसने आपसे अनुनय विनय की तो आपने उसकी हालत अच्छी कर दी। उस दिन से मेडिकल होस्टल में भी अन्य विद्यार्थी आप को मानने लगे।

आगरा में वे पहले गोकलपुरा मोहल्ले में रहते थे, उनके पास मौजी राम नामक एक सहायक रहता था। एक दिन वे आसन पर पूजा करने बैठ गए माला जो खूंटी पर टंगी थी पास लेना भूल गए। उन्होंने मौजी राम से माला ला देने के लिए कहा। जब बहुत देर तक वह माला नहीं लाया तो आपने मौजी राम से पूछा कि माला क्यों नहीं दे रहा है। मौजी ने जवाब दिया कि खूंटी पर टंगी माला हाथ ही नहीं आ रही है। वह स्टूल पर चढ़ कर उसे उतारने की कोशिश भी कर चुका है। तब आपने उससे कहा कि तुमने अपने हाथ धो लिये थे या नहीं। उसने कहा कि वह लघुशंका करने के बाद हाथ धोना भूल गया था। उनके कहने से जब वह हाथ धो कर माला लेने पहुंचा तो माला सहज ही उसके हाथ आ गई जो उसने उन्हें दे दी। लालाजी महाराज भी उनके पास कई बार आगरा जाया करते थे।

इसी प्रकार एक बार रतलाम में भी यादव लाल बरौदिया के घर सत्संग हुआ करता था। उसमें कालेज के एक मुस्लिम अध्यापक भी आया करते थे। डाक्टर साहब की फ्रेम जड़ित तस्वीर दीवार पर टंगी थी, जैसे ही उन मुस्लिम सज्जन ने डाक्टर साहब की टंगी हुई फोटो पर फूलों की माला चढ़ाने का प्रयत्न किया, वह तस्वीर भयंकर धमाके के साथ जमीन पर गिर कर चूर हो गई। सब चौंक

गए। पूछने पर उन्होंने बताया कि वे अपवित्र हालत में बिना स्नान किए आए थे और माला चढ़ा रहे थे।

सैलाना रावटी

मेडिकल स्कूल से अपनी शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् आपने होमियोपैथिक शिक्षा भी डिप्लोमा लेकर यथाविधि प्राप्त की। यह उपाधि लेने के बाद आप कुछ समय फुलेरा में अपने बड़े भाई श्रीहरप्रसाद जी साहब के साथ रहे। उसी समय रतलाम के पास मध्य भारत की एक छोटी-सी स्टेट सैलाने में मेडिकल ऑफिसर का पद रिक्त हुआ। समाचार पत्रों में उसका विज्ञापन छपा। उसे पढ़ कर आपने अर्जी भेजी और आपकी नियुक्ति मेडिकल ऑफिसर रावटी के पद पर हो गई। आप रावटी सर 1915 में पधारे। रावटी बम्बई दिल्ली लाइन पर एक छोटा सा स्टेशन है जो बम्बई की तरफ रतलाम जंक्शन से चौथा स्टेशन है। रावटी स्टेशन से रावटी गांव 5 मील दूर है वहाँ पैदल चल कर पहुँचना पड़ता था। रावटी के अस्पताल में आप डाक्टर थे। पं० रेवा शंकर जी (डॉ० शर्मा) आपके कम्पाउण्डर थे और पंडित हीरा लाल आपके यहाँ ड्रेसर थे। उसी समय रावटी में सेठ जगन्नाथ जी नाम के एक महानुभाव ठेकेदार थे। वे ही आपके मालवे में सर्वप्रथम शिष्य बने। बाद में पं० हीरा लाल तथा डॉक्टर शर्मा एक साथ आपके शिष्य हुए।

पं० हीरा लाल जी आपके साथ ही रहते थे आपका भोजन बनाना आदि सब काम किया करते थे। एक दिन पं० हीरा लाल जी बावड़ी पर पानी भरने गये। उस बावड़ी में अन्दर नहाने की मनाही थी। हीरा लाल जी ने सोचा कि कोई देखता तो है नहीं, चलो बावड़ी के अन्दर ही नहा लिया जावे। उन्होंने बावड़ी में ही डुबकी लगा ली। नहा कर कंधे पर भरा हुआ पानी का बरतन रक्खे घर पहुँचे। श्रीमान डॉक्टर साहब ने आपको देखते ही पूछा, "क्यों भाई हीरा लाल बावड़ी के अन्दर नहाए या बाहर ?" पं० हीरा लाल जी ने सहज भाव से कह दिया कि - बाहर नहाया। इस पर डाक्टर साहब ने फ़रमाया कि - "भाई हम तो देख रहे थे कि तुम बावड़ी के अन्दर नहाए ?" इस घटना से पं० हीरा लाल की आन्तरिक आँखें खुल गई। आप उसी समय से श्रीमान् डॉ० साहब के शिष्य हो गये।

एक बार रात के समय श्रीमान डॉ० साहब कृष्ण स्वरूप जी पं० गोरी शंकर जी से मिलने आए। मौसम कड़ाके की ठंड का था। पंडित जी खूब कपड़े पहन कर लिहाफ़ ओढ़ कर बन्द कमरे में सिगड़ी ताप रहे थे। आप आकर बैठे और आपने उनको तवज्जोह देना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि 10 मिनट में सब कपड़े उतार कर वे कमरे के बाहर टहलने लगे। पूछने पर बताया कि बहुत गर्मी मालूम होती है। जब आपने तवज्जोह देना बन्द कर दिया तो फिर धीरे-धीरे सब कपड़े पहन कर सिगड़ी तापने लगे। डॉ० रेवा शंकर को भी आपने दीक्षा दी थी। वे भी समाधि में इस प्रकार डूब जाया करते थे कि अस्पताल का समय हो जाने पर भी उनकी समाधि नहीं टूटती थी।

रावटीवाले पं० हीरा लाल जी कहा करते थे कि "श्रीमान्" (मालवे वाले उन्हें इसी सम्बोधन से पुकारते थे) लगातार 12 वर्ष तक नहीं सोए। वे उनके पूजा के समय अजमेर से सशरीर रावटी उपस्थित होते थे व बाद में अन्तर्ध्यान हो जाते थे। पं० हीरा लाल जी स्वयं को चिकोटी काट कर देखा करते थे कि यह कहीं स्वप्न तो नहीं।

यही बात यादव लाल जी ने, जो उस समय कोटा बैराज पर ओवरसीयर का काम करते थे, ने भी कही थी। वे कहते थे कि श्रीमान् कई बार पूजा के समय उनके पास सशरीर उपस्थित होकर, उन्हें हिदायत करके लुप्त हो जाते थे। तब श्रीमान् जयपुर में रहते थे।

रावटी में श्रीमान् की प्रसिद्धि वहाँ के महाराजा साहब तक पहुँची। वे उन्हें बड़े आदर से पेश आते थे और श्रीमान् की बात कभी नहीं टालते थे। यहाँ तक कि धीरे-धीरे महाराज साहब श्रीमान् से अपने प्राइवेट सेक्रेट्री का काम भी लेने लगे थे। वे कहा करते थे कि "डाक्टर जो काम (साधना) तुम करते हो, वही मैं भी करता हूँ मगर मैं जाहिर में करता हूँ और तुम पोशीदा।"

श्रीमान लालाजी महाराज रावटी में

परम संत महात्मा रामचन्द्र साहब भी, श्रीमान डॉ० साहब के आग्रह पर

सन् 1930 में रावटी और सैलाना पधारे थे तो आपकी निगाह में वह आकर्षण था कि अनेकानेक सत्संगी दूर-दूर से आकर रावटी में एकत्रित होने लगे।

कई हिन्दू, मुसलमान, ईसाई व हरिजन आपके प्रभाव में आकर सत्संग में शामिल हो गये, और आपने सब को अपने आत्मिक प्रवाह (रूहानी फ़ैज़) से तृप्त किया। चलते समय वे वहाँ का सत्संग हीरा लाल जी को सौंप गये क्योंकि श्रीमान डॉ० साहब अजमेर पधार गये थे।

परम संत महात्मा रामचंद्र जी के पास रावटी में एक वृद्ध ब्राह्मण भगवान जी पटवारी आए जिनकी आयु 80 वर्ष की थी। उन्होंने विह्वल होकर नेत्रों में अश्रु भर कर महात्मा जी से निवेदन किया कि मुझे भी राम भजन सिखलाइये। महात्मा जी कुछ देर मौन रहे और फ़रमाया कि आपका शरीर तो बिलकुल काम नहीं देता है। आप क्या कर सकेंगे ? ये सुन कर वह वृद्ध फूट-फूट कर रोने लगे और महात्मा जी के चरण पकड़ लिये। महात्मा जी ने उनकी पीठ ठोक कर फ़रमाया कि "जाओ आप का सब काम बन गया।" उन वृद्ध के चले जाने के बाद आपने पं० हीरा लाल जी से फ़रमाया कि "भाई हमने इन वृद्ध का काम पूरा कर दिया क्योंकि इनसे अब कुछ हो नहीं सकता था।"

जब महात्मा रामचन्द्र जी सत्संग के सिलसिले में रावटी से सैलाना पधारे तो श्रीमान् डाक्टर साहब के बड़े भाई होने के नाते आपसे मिलने राज्य के बड़े-बड़े अधिकारी आये। इस समय तक श्रीमान डॉ० साहब की रूहानी शोहरत भी खूब हो चुकी थी। सैलाना स्टेट के न्यायाधीश पं० गोवर्धन लाल जी भट्ट थे। वे भी महात्मा जी का नाम सुन कर उनके पास आए और राम नाम सिखाने के लिये अर्ज़ किया। जब महात्मा जी ने आपको तवज्जोह दी तो आपका दिल विशेष कठोर प्रतीत हुआ। आपने जज साहब को तत्काल डॉ० साहब के पास जाने का आदेश दिया क्योंकि डॉ० साहब की तवज्जोह बड़ी सख्त व तेज हुआ करती थी और वह पत्थर से हृदय को भी पिघला कर मोम कर देती थी। बुरे से बुरे संस्कारों को बात की बात में खाक कर देती थी। श्रीमान जज साहब को डॉक्टर साहब ने आँख बन्द करके बैठने का आदेश दिया और आपने जोर की तवज्जोह देना प्रारंभ किया। जज साहब के दिल

में से संस्कारों के जलने का ऐसा काला धुआं निकला जैसा रेल के इंजन में से निकला करता है। उस दिन से जज सा भी सत्संग में शामिल हो गये।

रावटी में लालाजी महाराज ने दिगन्त को अपने नूर से आप्लावित कर दिया। वह असर आज तक अनुभव किया जा सकता है।

श्रीमान् डॉक्टर साहब जब रावटी में निवास करते थे उस समय पं० हीरा लाल जी तथा डॉ० शर्मा ने आपकी इतनी सेवा की, कि आप उन से अत्यधिक प्रसन्न थे। पं० हीरा लाल जी ने अपना सर्वस्व आपको अर्पण कर दिया था।

एक समय आपने फ़रमाया कि जब मैं महात्मा जी का ख्याल (ध्यान) करता हूँ तो उनकी जैसी शकल हो जाती है और जब मौलवी साहब मौलाना परम संत फ़ज़्ल अहमद ख़ाँ साहब का ख्याल करता हूँ तो उनकी जैसी शकल नजर आने लगती है। रावटी में आपने पाँच बरस निवास कर मालवे के सैकड़ों जीवों का उद्धार कर दिया। उसके बाद आप सैलाना राज्य से नौकरी छोड़ कर अजमेर पधार गये।

रावटी छोड़ कर डाक्टर साहब अजमेर चले आए। जिस मकान में वे रहे उनके मालिक का लड़का आवारा होकर घर से भाग गया। मकान मालिक ने किसी अवधूत के पास जाकर उसका हाल पूछने के लिए डाक्टर साहब को साथ ले जाना चाहा। डाक्टर साहब ने बहुत मना किया मगर वे नहीं माने। उन्होंने कहा भी कि मेरे जाने से आपका काम नहीं होगा। जब डाक्टर साहब गए तो अवधूत एक छोटे से मन्दिर में बैठे थे। इन्होंने सलाम किया तो वे पीछे घूम कर बैठ गए। इन्होंने फिर सामने जाकर सलाम किया तो अवधूत वह स्थान छोड़ कर भाग गए। कारण यह था कि सालिक के सामने मज्जूब (अवधूत) नहीं टिक सकते।

अजमेर में ही एक जटा जटाधारी सन्यासी डाक्टर साहब के पास आए और उनका शिष्य बनने की इच्छा जाहिर की। डाक्टर साहब ने कहा कि वे तो एक गृहस्थ हैं और इस बारे में वे क्या जानें। सन्यासी जी ने कहा कि वे उनका पीछा छोड़ने वाले नहीं हैं क्योंकि उन्होंने डाक्टर साहब की प्रयाग के कुंभ के अवसर पर

बहुत तारीफ सुनी है। डाक्टर साहब ने अन्ततः उनसे पूछा कि क्या उनके कोई गुरु हैं ? उनके हाँ कहने पर उन्होंने कहा कि जाओ पहले उनसे मेरा शिष्य बनने की अनुमति लेकर आओ। कई वर्ष बाद जब रमते राम उनके गुरु उन्हें मिले तो वो संन्यासी जी उनसे अनुमति प्राप्त कर डाक्टर साहब के शिष्य बने। ये ही स्वामी गंगा भारती जी के नाम से जाने जाते हैं। इनका राजगढ़ (अलवर) में अवधूत आश्रम नामक आश्रम है, वह आज भी मौजूद है। स्वामी जी भी देह त्याग चुके हैं। आश्रम में डाक्टर साहब की फोटो की सुबह-शाम घंटे-घड़ियाल के साथ आरती होती थी। डाक्टर साहब को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने भारती जी से अप्रसन्नता जाहिर की और पूजा में से अपनी फोटो हटवा दी।

भारती जी ने देखा कि यह विद्या वैरागियों की नहीं वरन् गृहस्थों की है तो उन्होंने श्रीमान से पूछा कि यदि आवश्यक हो तो मैं यह बाना बदल लूं और गृहस्थ बन जाऊं। श्रीमान ने आपको इसी भेष में रहकर संन्यासियों में भी इसका प्रचार करने की आज्ञा दी। भारती जी इस भेष में अपने शरीरान्त तक इस आज्ञा का पालन करते रहे। संन्यासी समाज में आपके इस नये प्रकार के अध्यात्म के प्रति बड़ा आदर है। सर 1977 में ही आप (बाबा जी) का 90 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हुआ। सन् 1940 में एक बार श्रीमान के साथ मैं भी राजगढ़ गया। एक पंडित जी भी हमारे साथ गये। बाबा 'जी का व्यवसाय तो रहा मन्दिर की पूजा और हमारे इस अध्यात्म में मूर्ति-पूजा के लिए कोई स्थान ही नहीं, पर वे उसे छोड़ भी नहीं सकते थे क्योंकि उनके संन्यास देने वाले गुरु की उन्हें यह देन थी। श्रीमान की आज्ञा से वे मन्दिर की पूजा इस प्रकार करते थे जैसे हम सब गवर्नमेन्ट की नौकरी, दुकान, वकालत, डाक्टरी आदि करते हैं तथा अध्यात्म का अभ्यास तथा प्रचार उनका निजी कार्य था। यह अद्भुत समन्वय हमने और कहीं नहीं देखा। श्रीमान के साथ गृहस्थ अनुरूप हमारा भी स्वागत तथा सेवा सुश्रूषा हुई। बाबा जी आयु में श्रीमान से बड़े थे परन्तु हर समय सेवा में ऐसे खड़े रहते थे कि हमें तो अपने सामने उनको संन्यासी भेष में इस प्रकार अपने आप को प्रस्तुत करते देख लज्जा अनुभव होती थी।

अजमेर में ही बस्वा (बांदीकुई) के एक पहुँचे हुए संत अर्जुनदास जी भी

डाक्टर साहब के घर दर्शन के लिए आया करते थे। ये सब लोग कभी-कभी उनके आश्रम बस्वा जाते थे। वहाँ उन दिनों बहुत बाघ थे। वे सब अर्जुनदास जी की आज्ञा का पालन करते थे। बाबाजी जब हारमोनियम बजाते, तो टेकरी पर बने मन्दिर में चारों ओर बाघ उन्हें घेर कर बैठ जाते थे और अहिंसक हो जाते थे।

जब डाक्टर साहब अजमेर में थे तो जयपुर के स्टेशन मास्टर अपनी फरियाद लेकर उनके पास पहुँचे। यह 1930 के आसपास की बात है। डाक्टर साहब उस समय जयपुर स्टेशन मास्टर के यहाँ आकर ठहरे भी थे। उनकी लड़की का विवाह लखनऊ में हुआ। खानदानी कोठी थी, वहाँ एक ब्रह्म राक्षस उस लड़की को सताया करता था। कभी गिरगिट बन कर तवे पर बैठ जाता कभी खाने की थाली में विष्ठा डाल देता। कभी दीवार में से केवल एक हाथ निकाल कर कहता कि तेरा बच्चा मुझे दे दे। कभी त्रिपुंडधारी कोपीनधारी ब्राह्मण के रूप में नजर आता। मकान पुश्तैनी था, इसलिए उसे छोड़ा भी नहीं जा सकता था। सोच-विचार कर डाक्टर साहब ने स्टेशन मास्टर साहब को कहा कि अपनी लड़की को लिख भेजे कि जब कभी वह ब्रह्मराक्षस दिखाई दे तो लड़की उसे यह कह दिया करे "अजमेर के डाक्टर कृष्ण स्वरूप ने तुम्हें सलाम भेजा है।" उसने ऐसा कहा ही था कि ब्रह्मराक्षस वहाँ से गायब हो गया और उसे उससे मुक्ति मिली।

अजमेर में आप जनरल इन्श्योरेन्स सोसाइटी में रेकॉर्ड कीपर हो गये। आपने प्राइवेट दवाखाना भी खोला, जहाँ आप सबेरे शाम बैठा करते थे। इसके बाद प्रिय सत्संगी भाई ठा॰ मूल सिंह जी, जो श्रीमान् कानपुरवासी पूजनीय चच्चा जी महाराज के शिष्य थे आपको आग्रह पूर्वक अजमेर से जयपुर ले आए।

महात्मा आनंद भिक्षु जी

जब श्रीमान् डाक्टर साहब अजमेर में निवास करते थे तो एक बार श्री राम कृष्ण मिशन के उपदेशक महात्मा आनंद भिक्षु जी अजमेर में पधारे और उनके व्याख्यान होने लगे। उन्हें सुनने को आप भी जाया करते थे। महात्मा आनंद भिक्षु को यह पता लगा कि यहाँ भी एक बहुत बड़े संत निवास करते हैं तो आप श्रीमान् डॉ॰ साहब से मिलने गये। उसके पूर्व आपने कई प्रश्न वेदान्त और रूहानियत पर

सोच लिये कि ये जाकर श्रीमान् डॉ० साहब से पूछेंगे। जैसे ही आनंद भिक्षु श्रीमान् के निवास स्थान पर पहुँचे तो कुशल प्रश्न के बाद इधर उधर की बातें करके एक-डेढ़ घंटे तक बैठ कर वापस चले गये और कोई प्रश्न आपसे नहीं पूछा। फिर जब वे अपने ठहरने के मुकाम पर गये तो ख्याल आया कि अरे ? मैंने तो उनसे कोई प्रश्न ही नहीं पूछा।

दूसरे दिन सब प्रश्न कागज पर नोट करके ले गये। फिर भी श्रीमान् डॉ० साहब से कोई प्रश्न नहीं पूछा। तीसरे दिन वे केवल डॉक्टर साहब से यह करिश्मा होने का कारण पूछने को आए और आते ही बड़े ही नम्र भाव से पूछने लगे कि मैं परीक्षा लेने के लिये यह प्रश्न नहीं पूछना चाहता था। आपके शिष्य के रूप में जिज्ञासु की तरह पूछना चाहता था अतएव मुझे भी उपदेश दीजिये। श्रीमान् ने उनका संतोष किया। उनके जाने के बाद किसी शिष्य ने पूछा कि महात्मा आनंद भिक्षु जी प्रश्न क्यों नहीं पूछ पाए तो श्रीमान् डॉ० साहब ने कहा "हम पूछने देते तब न !"

एक बार पूजनीय डॉ० साहब के साथ कुछ लोग देहली गये, वहाँ परम संत निजामुद्दीन औलिया साहब की समाधि पर गये। जैसे ही समाधि के अहाते में पहुँचे, जोर का सन्नाटा सारे शरीर में महसूस होने लगा। समाधि पर पहुँचते-पहुँचते तो लोग गिरने से लगे। जब तक समाधि पर बैठे रहे, अजीब कैफियत गुज़रती रही। उसके बाद सात दिन तक सभी की यह हालत रही कि मानो बिजली के करंट पर हाथ रक्खा हो। ऐसा सारे शरीर में झन्नाटा होता रहा। इसी प्रकार श्रीमान् के साथ उजैन, में मछंन्दरनाथ जी की समाधि पर भी शिष्य गण गये थे तो वहाँ भी आपने सब सत्संगियों को रूहानियत से फैज़याब कर दिया था।

श्रीमान् डॉ० साहब का स्वभाव अत्यन्त सरल व विनोदी था। एक बार कुछ लोग आपके साथ बैल गाड़ी में बैठ कर मंडावल एक सत्संगी बन्धु के सुपुत्र के यज्ञोपवीत में जा रहे थे। रास्ते में कुछ दूरी पर जोर की दावाग्नि लगी हुई थी। आपने फ़रमाया कि "कहो तो हम इसे बुझा दें। "एक सत्संगी ने कहा-"बुझा दीजिये। जाने कितने पशु-पक्षी जल रहे होंगे।" आपने उसी वक्त उंगली का इशारा किया और

दावाग्नि बुझ गई। आप अत्यन्त परदुःख कातर थे। किसी दुखिया की आवाज आप फौरन सुनते थे। और जी जान से उसकी सहायता करने को जुट जाते थे। आपकी दुआ से और बुजुर्गान की मेहरबानी से श्री भूल सिंह जी पर डाला गया झूठा कत्ल का मुकदमा समाप्त हो गया।

सेवकों पर तो अनेक विपत्तियाँ आईं। वे सब आपकी दुआ से ही दूर हुई। श्रीमान डॉ॰ साहब इतने उच्च कोटि के सन्त थे तो भी अपने आपको इस खूबी से छिपा कर रखते थे कि कोई जान भी नहीं पाता था कि आप इतने बड़े हैं। आप गुदड़ी के लाल थे।

आपकी शिक्षा

आप में गुरुडम बिल्कुल नहीं था। न आप किसी से कुछ इच्छा रखते थे। जो खुशी से भेंट करता था उसे भी अनिच्छा पूर्वक ग्रहण करते थे। ग़रीबों की भेंट तो आप केवल हाथ से स्पर्श करके लौटा देते थे। अजमेर व जयपुर में जब आप दवाखाना चलाते थे तो आपने कभी किसी से फीस नहीं ली ओर न दवाइयों के पैसे माँगे। जो चाहे दे, न चाहे न दे। इस प्रकार जयपुर व अजमेर में आपके दवाइयों के हज़ारों रुपये डूब गये परन्तु आपने कोई शिकायत या पछतावा नहीं किया। आपका जीवन इतना सादा था कि उसमें दिखावा या बनावट का कोई स्थान ही न था। आपका उपदेश हमेशा यह रहता था कि जबानी जमा खर्च से काम नहीं चलेगा। मानव का जीवन अमली (Practical) होना चाहिये। आप समय के सदुपयोग पर बहुत जोर देते थे। बेकार कामों में समय बिताना आप अनुचित समझते थे। संयम पूर्ण जीवन व्यतीत करने पर भी आप अधिक बल देते थे। मन को वश में करने का आप यह सरल उपाय बताया करते थे कि मन जब कोई चीज माँगे उसे न दो। वह अपने आप ठीक राह पर आ जायेगा।

आपके उपदेश की यह विशेषता थी कि साधक की जिस प्रकार की दिली या रूहानी हालत होती थी उसको वैसा ही अभ्यास बताया करते थे। फिर धीरे-धीरे उसको ठीक राह पर लाते थे। जो सत्संगी कर्मकांड के प्रेमी होते थे उनको आप कर्मकांड में लगा देते थे। जिसे करते-करते साधक की वृत्ति बहिर्मुखी

से अन्तर्मुखी वृत्ति हो जाती थी। वह कर्मकांड पर से उपासना पर आ जाता था। आपके कई पण्डित शिष्यों को आपने गायत्री मंत्र का जाप करने की आज्ञा दी परन्तु साधक जब संध्या वंदन करके गायत्री जाप करने बैठता था तो आधी माला भी पूरी नहीं कर पाता था कि समाधि लग जाती थी। इस प्रकार की आप रूहानी तालीम देते थे। आपके प्रभाव में आकर कई शराबियों ने शराब छोड़ दी। आपने कभी यह नहीं फ़रमाया कि तुम शराब पीना छोड़ दो। आपका तो यह विश्वास था कि तुम चाहो जितनी शराब पिओ हम में ताकत होगी तो हम छुड़ा देंगे। इस तरीके से आपने हज़ारों गिरे हुए जीवों का उद्धार किया।

जब आपका निवास जयपुर में था तो आपकी सेवा में कई राजा, जागीरदार वकील, प्रोफेसर, कलक्टर, डाक्टर व जज सत्संग के लिए हाजिर हुआ करते थे। एक बार जो आपके पास आकर बैठ गया वह आपकी बातों को सुन कर इस प्रकार आकर्षित हो जाता था कि उसकी आपके पास से उठ कर जाने की तबियत नहीं चाहती थी। एक बार आपके दर्शन कर लेने पर आपकी बातें सुन लेने पर बार बार आपके पास जाकर आपकी बातें सुनने को तबियत चाहती थी। एक स्थान पर जिक्र आया है कि हर कदम पर आप 60 मंत्रों का पाठ करते हुए चला करते थे।

एक बार जनाब क़िबला परम संत मौलवी अब्दुल ग़नी ख़ाँ साहब (आपके चाचा गुरु) जयपुर में आपके निवास स्थान पर पधारे। उस समय एक अन्धे वैद्य जी आपके कमरे में साधना में लगे हुए थे। मौलवी साहब ने मकान की सीढ़ियाँ चढ़ते हुये फ़रमाया "जनाब डाक्टर साहब ये कौन बुजुर्ग आपके यहाँ तशरीफ फ़रमाते हैं जिनके सीने पर चार चिराग मुतवातिर रोशन हुए मालूम हो रहे हैं ?" श्रीमान डाक्टर साहब ने फ़रमाया कि इनको साधन करते केवल कुछ हफ़्ते हुये हैं कि इनके चारों लतीफ़े जागृत (ज़ाकिर) हो गये हैं। मौलवी साहब ने फ़रमाया "वल्लाह ! इस क़दर आपकी तालीम का जिन्दा जादू आनन फानन करिश्मा बतलाता है।" श्रीमान डाक्टर साहब ने फ़रमाया यह सब आपके चरणों की कृपा है। हुजूर शाह अब्दुल ग़नी साहब ने फ़रमाया था "डाक्टर साहब आप राजपूताना (तब यही नाम था) व मालवा के 'क़ुतुब' हैं।" एक बार यही मौलवी साहब शाहपुरा के राजा साहब के यहाँ

निमन्त्रण से पधारे। वहाँ पधारने पर आपने शाहपुरा के दरबार (जागीरदार साहब) को तवज्जोह दी। कोई असर नहीं हुआ। आपने झट फ़रमाया "भाई दरबार साहब, यह इलाका डाक्टर साहब का है, मैं उनकी इजाजत

के बिना कोई रूहानी काम नहीं कर सकता। आप मोटर भेज कर फौरन उन्हें बुलवाइये।" श्रीमान डाक्टर साहब जयपुर से शाहपुरा उसी वक्त लाये गए और मौलवी साहब की आज्ञा से शाहपुरा दरबार को आपने तवज्जोह दी । यह अनुशासन है इस तरीके का। एक बार परम संत महात्मा जी (पूज्य लालाजी) के शिष्य 'न चतुर्भुज सहाय साहब, श्री जगन्नाथ प्रसाद माथुर, सेशन जज के साथ जयपुर में श्रीमान् डाक्टर कृष्ण स्वरूप साहब के निवास स्थान पर पधारे। आपसे अर्ज किया कि मैं आपकी इजाजत से जयपुर में भंडारा करना चाहता हूँ। आपने फ़रमाया "खुशी से कीजिए।" और आशीर्वाद भी दिया।

आप का यह अटल सिद्धान्त था कि इंसान सब कुछ कर सकता हैं। वह नर से नारायण हो सकता है। जिस तरह बुनियादी बातों में मन लगाया जाता है उसी तत्परता व एकाग्रता के साथ रूहानियत का साधन किया जावे तो कोई कारण नहीं कि इनसान को सफलता न मिले। दत्तचित्त होकर साधन नियमित रूप से करना चाहिये। संशय से काम नहीं चलेगा। जहाँ तक मन के रोक थाम का सवाल है आपका यह उपदेश था कि मन का स्वभाव चंचल है वह एक जगह ठहर नहीं सकता और न ही विकल्प से खाली रह सकता है। इसलिए सबसे पहले उसकी एक जगह बैठने की आदत डालो अर्थात् अपने इष्टदेव गुरुदेव की शकल पर उसे पहले जमाओ। जैसे ही आपने श्रद्धा, विश्वास तथा प्रेम के साथ अपने गुरुदेव पर मन को जमाया कि उसकी एक जगह बैठने की आदत पड़ जाएगी। तुम्हारे पूज्य गुरुदेव उसकी कुछ खास सम्हाल करेंगे। कुछ तुम प्रयत्न करो। इस प्रकार दोतरफा कार्यवाही से मन ठहरने लगेगा। उसमें आत्मानंद की लहरें उठने लगेंगी। वह बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी हो जायेगा। एक बार आत्मानंद का अलौकिक स्वाद चखा देने पर वह बार-बार उसी स्थिति को प्राप्त करने का प्रयत्न अपने आप करने लगेगा। कुछ समय में ऐसा अभ्यास हो जायेगा कि वह दुनियावी काम करते हुए हमेशा आत्मानंद की स्थिति में रहने लग जायेगा। इस प्रकार तुम्हारा काम धीरे-धीरे

बन जायेगा। यदि तुम मन को किसी एक स्थान (अपने इष्टदेव गुरुदेव से उत्तम स्थान कोई नहीं है) पर टिकाने का अभ्यास नहीं करोगे तो वह इधर उधर भागता रहेगा। उसकी संकल्प शक्ति निर्बल हो जायेगी। तुम में अभ्यास और साहस की कमी हो जायेगी। तुम को दीन दुनियाँ के हर काम में असफलता मिलेगी और तुम कहीं के नहीं रहोगे। आप मन के साथ जबरदस्ती करने का उपदेश नहीं देते थे। उसको फुसला कर या पलट कर ठीक राह पर लाने का आदेश देते थे।

गुरु में लय

आप स्वयं अपने पूज्य गुरु महाराज में तथा महात्मा जी में इतने लय हो जाते थे कि उन्हीं की शकल बन जाती थी। एक बार एक सेवक ने ध्यान में आपके चेहरे पर दाढ़ी लगी हुई देखी। जब ध्यान समाप्त हुआ और उस सेवक ने पूछा आज मुझे आपके चेहरे पर दाढ़ी कैसे नजर आई तो फ़रमाया "मैं उस वक्त गुरु महाराज के ख्याल में था। उनके चेहरे पर दाढ़ी थी इसलिए आपको भी मेरे चेहरे पर दाढ़ी दिखाई दी।" गुरु भक्ति व आज्ञाकारिता आप में कूट-कूट कर भरी थी। आपका फरमाना था कि इसके बिना कोई साधक अपने गुरु से यथोचित लाभ नहीं उठा सकता। यदि उसमें यह दोनों बातें नहीं होंगी तो वह मनमुखी होकर एक न एक दिन मारा जायेगा। अतएव साधक को हमेशा गुरुमुख रहना चाहिये। अटल श्रद्धा विश्वास व भक्ति के साथ उनकी आज्ञा का पालन दीन व दुनियाँ के कामों में करना चाहिये। फिर देखिये आपकी दुनियावी व रूहानी आपत्तियाँ हट कर कैसी तरक्की होती है। आप अत्यन्त दयालु व कृपालु थे। ग़रीबों का दुःख देख कर आप रो पड़ते थे और उनके दुःखों को दूर करने के लिए अपनी जिस्मानी कमजोरी व बीमारियों की तकलीफों की परवाह न करके दिन रात दुआ किया करते थे। आपकी दुआ के जिन्दा जादू का एक बार नहीं अनेक बार अनुभव किया गया। आप कभी भी किसी से नकद या भेंट पूजा-सम्मान आदि नहीं लेते थे। दवाई आदि की सेवा की कीमत भी नहीं।

आपके कश्फ का यह हाल था कि सत्संग में बैठने वाले प्रत्येक व्यक्ति के दिल व ख्यालात का उन्हें पूरा पता रहता था। कभी किसी के ख्याल में पूजा करते

समय पतंग उड़ाने का अथवा मसाला पीसने का ख्याल आदि आ जाता तो बिना नाम बताए वह कह दिया करते कि कम से कम पूजा के समय तो मसाला न पीसा करें। एक समय कहा पूजा के समय पतंग तो न उड़ाया करो, सुनने वाले शर्मिंदा हुए। जिसकी जैसी रुचि अथवा शक्ति होती उसी के अनुरूप पूजा का साधन बता देते थे। एक अत्यन्त वृद्धा स्त्री को उन्होंने मछलियों को खिलाने के लिए राम नाम लिखित परचे की आटे की गोलियाँ बता दी, किसी को केवल माला फेरना, किसी को ध्यान।

एक बार साँभर में पोस्ट मास्टर राम लाल जी, जो कई घाटों का पानी पिए हुए थे-जैसे नानकपंथ कबीर पंथ आदि-आदि, ने उनसे कहा कि मुझे तो एक चीज की बड़ी तमन्ना है जो आज तक पूरी नहीं हुई। वह थी 'अनहद शब्द' को सुनना। डाक्टर साहब ने उसी समय उन्हें यह कह कर ध्यान में बैठाया कि यह तो बड़ी छोटी चीज है। ध्यान में उन्हें अनहद शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ा और उन्होंने डाक्टर साहब के चरण पकड़ लिए।

जयपुर में ठाकुर कुशल सिंह जी थाना सदर के इंचार्ज थे। उन्होंने बड़े इसरार से उनसे कहा कि एक शाह साहब चान्दपोल दरवाजे बाहर आकर ठहरे हैं। उनकी बड़ी शोहरत है। वे हर किसी से हाथ मिलाते ही, आगे-पीछे का उस व्यक्ति का हाल बता देते हैं। उनके अधिक इसरार पर डाक्टर साहब भी शाह साहब से मिलने गए। उनसे हाथ मिलाते ही उनकी वह सारी शक्ति गायब हो गई। शाह साहब उसी रात शहर छोड़कर गायब हो गए।

उनके कुछ लेखों का संग्रह 'संत वाणी संग्रह' प्रथम भाग के रूप में, व एक पुस्तक 'फ़क़ीरों की सात मंज़िलें' प्रकाशित हो चुकी है।

सल्ब करना

सन् 1956 के आरम्भ में एक दिन मैं श्रीमान् के पास में बैठा था कि अचानक आपने मुझसे प्रश्न कर दिया, “बाबू हरनारायण ! तुम्हें सल्ब करना आता है ?” मैंने उत्तर में केवल सिर झुका लिया। मुझे इसकी विधि पूर्णतया मालूम थी,

परन्तु किसी गुरु पदवी के महात्मा ने मुझे इसका अधिकार नहीं दिया था। मैंने कई वरिष्ठ अभ्यासियों को तथा अध्यात्म के शिक्षकों को सल्ब करते देखा भी था। अतः मैं यह तो कह नहीं सकता था कि मुझे नहीं मालूम। श्रीमान ने मेरा भाव तुरन्त पहिचान लिया और कहा "इसमें क्या है, ऐसे होता है (गर्दन घुमाकर) जब आवश्यक समझो, कर लिया करो।"

सल्ब करने का मतलब है किसी के शरीर से रोग अथवा कष्ट को निकाल देना। हमारे अध्यात्म में यह साधारण सी क्रिया है। परन्तु इस का खेल करना और दुनियाँ में यह दिखलाना कि देखो हम यह भी कर सकते है इसकी कड़ी मनायी है। इस प्रयोग को अनुचित रूप से करने पर यह शक्ति जैसे दी जाती है वैसे ही वापिस भी ले ली जाती है।

सर 1958 में श्रीमान कुछ अस्वस्थ रहने लगे। उस समय आपके दोनों सुपुत्र जयपुर से बाहर ट्रांसफर ड्यूटी पर थे। अतः आपके इलाज आदि का भार मुझ पर आया। ऑफिस जाते समय आपका सारा विवरण लेता। फिर डाक्टर से कह कर दवा लेता। ऑफिस पहुंच कर दवा श्रीमान के पास भेज देता। लौटते समय सीधा आपकी सेवा में उपस्थित होता। आप संध्या की चाय अधिकतर मेरे ही साथ पीते और प्रतीक्षा करते रहते।

एक बार जब ऑफिस से आपकी सेवा में पहुँचा तो आप कुछ अधिक अस्वस्थ होने के कारण अचेत से पड़े थे। मुझे तुरन्त याद आया कि मैं सल्ब करने का अधिकार पा चुका हूँ। तीन चार साँसे खेंचने पर ही आप में चेतना आ गई। पूछा, तुम कब से खड़े हो ? निवेदन किया, अभी आया हूँ। इस प्रकार मुझे कई बार श्रीमान के कष्ट को सल्ब करना पड़ा। अब भी जब आवश्यकता होती है इस कार्य को कर लेता हूँ तथा श्रीमान की याद उस समय ऐसी आती है कि जैसे वे मेरे पास खड़े ही नहीं वरन् मुझ में समाये हुए हों और सल्ब करा रहे हों।

भक्त श्री किशन-पुलिस कान्सटेबिल

बहुत से पुलिस कर्मचारी आपकी सेवा में सत्संग के लिए आते थे। ये सब

इस विभाग के कर्मचारियों पर भाई साहब परम सन्त श्रीमान ठा॰ रामसिंह जी और बाद में उनके साथ-साथ सुपरिन्टेण्डेंट साहब ठाकुर मूलसिंह जी के शुभ प्रभाव के कारण ही था। अन्यथा इस विभाग के कर्मचारियों का मार्ग (आचरण) थोड़ा अन्य प्रकार का ही देखा गया है। इन्हीं लोगों में एक कान्सटेबिल श्री किशन नाम का भी आपके पास आया करता था। वह सुपरिन्टेण्डेंट साहब की सेवा में था व हिम्मत करके श्रीमान से निवेदन कर बैठा कि मुझे भी कुछ बताइए। आपने उसे भी ध्यान करा दिया और नित्य करते रहने का आदेश दे दिया। श्री किशन के संस्कार कुछ अच्छे थे। अतः थोड़े दिनों में ही इसका अभ्यास परिपक्व हो गया तथा समाधि की अवस्था सहज में ही आने लगी। ड्यूटी पर खड़े-खड़े समाधि लग जाती थी।

सन् 1940 के पहले की बात है। उन दिनों श्री किशन की ड्यूटी पुलिस लाइन में थी। प्रातः काल ही परेड होती, उसमें लाइन वालों की उपस्थिति अनिवार्य होती। यह श्री किशन भी नित्य प्रति समय पर जाता। एक दिन प्रातः जो पूजा ध्यान में बैठा तो ऐसी समाधि लगी कि धूप निकल आई और परेड आदि समाप्त होने के बाद ही आँख खुली। श्री किशन मन में घबराया कि आज की अनुपस्थिति का दण्ड भोगना पड़ेगा-क्या हो कितना हो ? पर चूक तो हो गई, उसके लिए अब कुछ नहीं हो सकता था। वह डरते-डरते अपने साथियों से कह रहा था कि "आज परेड चूक गया जाने क्या और कितना दण्ड मिलेगा।" साथियों ने व्यंग किया आज तूनें कितनी भांग पी, जो बहकी-बहकी बातें कर रहा है ? हमारे साथ परेड की, और कहता है मुझसे चूक हो गई। श्री किशन को कैसे विश्वास होता ? उसने अपने हवलदार के पास जाकर रजिस्टर में अपनी उपस्थिति भी देखी और उपस्थिति नियमित देखकर अचम्भे में पड़ गया। अपनी बैरक में आकर बड़ी देर तक इसी विषय पर सोचता और रोता रहा। अन्त में निर्णय लिया कि मुझे ऐसी नौकरी ही नहीं करनी जिसमें मेरे गुरु भगवान को नौकरी देनी पड़े। नौकरी से त्यागपत्र लिखा, कार्यालय में दिया और वहाँ से चल दिया। साथियों ने तथा अन्य वरिष्ठ कर्मचारियों ने समझाने की चेष्टा की परन्तु श्री किशन का निर्णय नहीं बदला। वह तो अपने गुरुदेव को अपने स्थान पर नौकरी करना, किसी भाँति भी सहन (बरदाश्त) नहीं कर सकते थे।

जब किसी प्रकार भी श्री किशन को नौकरी करते रहने को नहीं मनाया जा सका तो पुलिस अधिकारियों, जिनमें सुपरिन्टेण्डेंट ठाकुर मूलसिंह जी प्रमुख थे, ने प्रयत्न करके श्री किशन की पेन्शन करा दी जो उस समय केवल चार रुपये मासिक थी, और बाद में 300 रुपये मासिक हो गई। श्री किशन ने उसके बाद कोई नौकरी नहीं की। आपने गाँव 'सेंतीवास' चले गये जो अब तहसील टोडाराय सिंह जिला टौंक में है। वह हमारे पास और गुरु महाराज के परिवार के सदस्यों के पास आते रहते थे। ऐसे प्रेमी भक्त कम ही देखने में आते हैं। गुरु कृपा का महत्व भी ऐसे ही लोगों में देखने को मिलता है। सन् 1968 के बाद वह नहीं आये सम्भवतः अब वह नहीं है।

ठाकुर साहब मूलसिंह जी

हमारे यहाँ, जयपुर में एक ठाकुर साहब मूलसिंह जी कई वर्षों से जयपुर में स्टेट के समय में पुलिस विभाग में सुपरिन्टेण्डेंट रहे थे। वे अपने आरंभिक जीवन में ये बड़े कठोर (सख्त) प्रकार के पुलिस ऑफिसर कहे जाते थे। उन्होंने स्वयं ही हमें बतलाया था कि सन् 1929 में जब श्रीमान लाला जी महाराज का इधर पधारना हुआ उस समय पूज्य भाई साहब ठाकुर रामसिंह जी ने इनसे निवेदन किया कि गुरु महाराज पधारे हैं आप भी दर्शन कर लीजिए। उत्तर मिला कि उन्हें मेरे दर्शन के लिये जब आपको सुविधा हो ले आना। भाई साहब ठा॰ रामसिंह जी उनके इस कटु उत्तर को सुन कुछ न कह कर चुप हो गये। गुरुदेव (श्रीमान लाला जी महाराज) के निर्वाण के भी कुछ वर्षों पीछे इन्हीं ठाकुर साहब मूलसिंह जी को इस अध्यात्म की ऐसी लगन तड़प लगी कि भाई साहब ठाकुर रामसिंह जी के पास आकर बड़ा पश्चाताप किया और बोले, "मुझे तो आप ही अभ्यास बतलाइये। वह अनमोल अवसर तो मैंने दुर्भाग्यवश खो दिया अब मुझे आप सही रास्ते पर लगाइये।"

सुपरिन्टेण्डेंट साहब, ठाकुर मूलसिंह जी ने स्वयं मुझे यह सारी बातें बतलाई और वे सदा ही हमारे गुरुदेव के प्रति अपने इस व्यवहार के लिये लज्जित होते रहे। आपका एक और कथन हम सब को नोट कर लेने योग्य है कि "हम खूब गोश्त खाते, शराब पीते थे और यह समझते थे कि ऊपर की आमदनी न हो तो कैसे

परिवार का निर्वाह होगा ? परन्तु इस सत्संग में आ जाने के पश्चात् यह सारी बातें छोड़ देने पर भी हम देखते हैं कि हम पहले से कहीं अधिक प्रसन्न तथा सुखी हैं। आराम से हमारा निर्वाह उसी वेतन में हो जाता है।"

इन ठाकुर साहब मूलसिंह जी (जिनकी हमारे पूज्य डाक्टर साहब को अजमेर से लाने और जयपुर में बसाने में प्रमुख भूमिका थी) ने पूज्य डाक्टर साहब की बड़ी सेवा की। अध्यात्म मार्ग में श्रीमान ने भी उन की पर्याप्त सहायता की, यहाँ तक कि इन्हें अभ्यास आदि बतलाने की भी आज्ञा दे दी। हमने ठाकुर साहब को उनके अन्तिम दिनों में भी उनके ग्राम मेहरीली जाकर देखा। वे अपने ध्यान में ऐसे मस्त रहते थे कि उन्हें महात्मा कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। अवश्य ही इन्हें हमारे श्रीमान पूज्य डाक्टर साहब ने पूर्ण कर दिया था।

फ़क़ीरों की सात मंज़िलें

श्रीमान ने एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम 'फ़क़ीरों की सात मंज़िलें' है। यह पुस्तक आपने उन दिनों में लिखी जब आपकी दृष्टि मन्द हो रही थी। मोतिया-बिन्दु बढ़ गया था। इन्हीं दिनों हमारे पूज्य भाई साहब परम सन्त डाक्टर श्रीकृष्ण लाल जी भी जयपुर दो बार पधारे तो श्रीमान ने यह पुस्तक उन्हें दिखलाई और अपनी विवशता भी बतलाई कि इसे दुबारा पढ़ कर छूटी हुई किसी बात को पूरा करने में दृष्टि के कारण कुछ असमर्थता आ गई है। श्रीमान भाई साहब आपसे इस पुस्तक को ले गये और फिर इसको प्रकाशित किया। इस पुस्तिका में भी हमारे इस अध्यात्म के लिए सरल शब्दों में मार्गदर्शन किया गया है। रामाश्रम सत्संग सिकन्दराबाद-गाजियाबाद से प्रकाशित यह पुस्तक अभ्यासियों के बहुत काम की है।

मेरी समझ में जो गूढ़ तत्व इसमें तथा अन्य सन्तों की पुस्तकों, कविताओं, साखियों आदि में लिखे गये हैं उनका बहुतेरा अंश सर्व साधारण की समझ में पूरी तरह नहीं आता। कारण यह है कि अध्यात्म की उस स्थिति तक की बात तो जहाँ हम अपने अभ्यास तथा गुरु कृपा द्वारा पहुँचे हैं समझ में आती है आगे की बात नहीं समझ पाते।

श्री मुकुंद भारती जी

जैसा बताया जा चुका है श्रीमान के एक सत्संगी गंगा भारती जी महाराज थे। उन्होंने राजगढ़ में आश्रम बनाया। वे पहले एक बावड़ी पर राजगढ़ में एक कोठरी में रहते थे। उनके साथ उनके एक शिष्य मुकुंद भारती रहते थे। डॉ० कृष्ण स्वरूप साहब वहाँ पधारे। छंद भारती ने श्रीमान् को सिगरेट पीते देखकर कहा कि "आप इतने बड़े महात्मा होकर सिगरेट पीते हैं।" श्रीमान हुक्के के लिए कहा करते थे-

"हुक्के को पीना खलल आबरू है
सुबह होते ही आग की जुस्तजू है
मगर इसमें बड़ी नेक खू (खासियत) है
कि खीचों तो अल्लाह फूंको तो हू है।"

भारती जी की सिगरेट पीने की बात को सुन कर श्रीमान ने सिगरेट का कश खींचा और कहा "अल्लाहू"। यह कहना था मुकुंद भारती "अल्लाहू-अल्लाहू" चिल्लाने लगे। बड़ी देर श्रीमान वहाँ ठहरे। उनका 'अल्लाहू' कहना बंद न हुआ। जब श्रीमान वापस लौटने लगे तो गंगा भारती जी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि मुकुंद भारती की यही हालत रही तो वह मर जाएगा। श्रीमान् ने अपने बटुए से दो इलायची दाने दिए कि यह खिला दो। दाने खाते ही मुकुंद भारती जी सामान्य हो गए।

अन्य

श्रीमान फेल्ट केप (टोपी) पहना करते थे। एक सज्जन मिश्री लाल ने गलती से उनका केप पहन लिया क्योंकि उसका केप भी वैसा ही था। जैसे ही वह केप पहन कर बाहर आया उसे पूरा जयपुर जलता हुआ नजर आया। उसकी हालत बदहवास हो गई। घबरा कर पुनः श्रीमान की सेवा में आया तो श्रीमान ने कहा भाई तुम गलती से मेरा केप पहन गए अब कभी ऐसी गलती नहीं करना। एक बार उनके पलंग पर एक बच्चे को गल्ती से सुला दिया गया तो वह बेहोश हो गया।

आपकी तवज्जह पत्थर तोड़ तवज्जह हुआ करती थी जो दिलों को रेज़ा-रेज़ा कर देती थी । आप एक नजर में अभ्यासी को पूर्ण करने की क्षमता-सामर्थ्य रखते थे।

आप दूसरों के कष्ट देख कर शीघ्र ही द्रवित होकर रोग खींच लिया करते थे। कभी-कभी स्वयं भी ले लेते थे।

अन्तिम समय के पूर्व 3-4 माह तक आपने जयपुर में रह कर होमियोपैथिक चिकित्सा करवाई । अन्तिम समय के 20 दिन पूर्व आपको आपके जेष्ठ पुत्र श्री नरेन्द्रमोहन सक्सेना, जो उस समय S.D.M. टोंक थे, टोंक इलाज के लिए ले गए। वहाँ आपकी सेवा, सुश्रूषा व चिकित्सा की अत्यंत सुन्दर व्यवस्था की गई । वहाँ जब आपकी हालत गिरने लगी तो आपने फ़रमाया छगन लाल (आचार्य-जज) व हीरा लाल (वैद्य जी) को बुला लें। इन लोगों को तार दिये गये। ये सब लोग चार दिन पूर्व आपकी सेवा में पहुंच गए। अन्तिम दिनों में आपके अन्दर से गुलाल निरन्तर बरसता था। आपने तवज्जोह देना एक अर्से से बन्द कर दिया था क्योंकि आपकी तवज्जोह कोई बरदाश्त नहीं कर सकता था । जिस कमरे में आपका पलंग बिछा था उसमें अधिक समय तक बैठना संभव न था । आप सदा ब्रह्मलीन रहते थे। आपका शरीर आँख बंद करके देखने पर सारा चमकता दमकता प्रकाशमय नजर आता था। उसमें से प्रकाश पुंज बिखर रहे हैं ऐसा अनुभव होता था ।

अंत समय में कोई 3-4 माह पूर्व आपने खाना-पीना सब त्याग दिया था न खाना खाते थे न पानी या दूध पीते थे। सुबह-शाम चाय की केवल एकएक घूंट मात्र लेते थे। ऐसी हालत में नित्य प्रति सुबह घूमने जाते रहे। चाल इतनी तेज कि कोई साथ न चल सकता था। आखिरी 3 दिन आँखें बन्द करके पलंग पर लेट गए। मगर हर बात का, खासतौर पर पवित्रता का बराबर ख्याल बना रहा। चौबीस घण्टे आँखें बन्द किए प्रार्थना में हाथ चलते रहते, रोम-रोम से अजपा जाप हाथ लगाते ही स्पष्ट सुनाई पड़ता था। इंजेक्शन व दूध को भी बाह्य वस्तु कह कर त्याग दिया। यह सब शरीर शोधन के लिए किया और इच्छा मृत्यु का वरण किया जैसे जैनी लोग संथारा

करते हैं। जलाल का यह आलम था कि जिस कमरे में वे लेटे व शरीर त्यागा वहाँ इस क़दर गर्मी थी कि कोई भी 5 मिनट के लिए वहाँ खड़ा नहीं रह सकता था।

अन्त समय प्रायः सभी सत्संगी बंधु मौजूद ये। उन्होंने इस जलाल को स्वयं अनुभव किया। 19 सितम्बर 58 को एक ज्योति अनन्त ज्योति में विलीन हो गई। ठाकुर मूलसिंह ने उनके शरीर से एक प्रकाशपुंज को ऊपर की ओर धीरे-धीरे जाते स्पष्ट अनुभव किया व उपस्थित लोगों को उस समय दिखाया भी था।

समाधि

आपकी समाधि फतेहगढ़ में श्रीमान लालाजी महाराज की समाधि के परिसर में है व अत्यन्त पवित्र स्थान है। यहाँ पर बैठ कर श्रीमान की पत्थर तोड़ तवज्जह का बखूबी अनुभव किया जा सकता है। श्रीमान धुर के भेदी थे। आपकी समाधि पर अत्यन्त विनीत भाव से प्रणाम अर्पित कर कृपा की भीख माँग़नी चाहिए।

इसी के साथ ही हिन्दुस्तान में नक्शबंदिया सिलसिले के 35वीं पीढ़ी तक के बुजुर्गों का वर्णन सम्पन्न होता है। इसके बाद की पीढ़ी के महापुरुषों का वर्णन गुरु भगवान की इच्छानुसार फिर लिखा जायेगा।

अब बस करो नींद आती है बाकी फिर सुनाएँगे
जरा सी रह गई है रात, अफ़साने बहुत से हैं।

गुरु भगवान सब का कल्याण करें।

प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित सब सन्तों के अतिरिक्त लेखक समय के सभी सन्तों के सम्पर्क में आये हैं।

आध्यात्म मार्ग में "यादों" के माध्यम से अपने ध्येय को पहुँचना कैसे सरल हो जाता है यह सब आपको इस पुस्तक में मिलेगा।

लेखक की अन्य दो पुस्तकें अँग्रेज़ी भाषा में है जिनका विवरण अँग्रेज़ी भाषा में ही निम्नलिखित है।

THE SECRET OF REALISATION

The technique of the Saints as to how they raise the soul from the low gross levels to the highest levels of consciousness and liberate the poor soul from the bondage of the intricate net of maya, get him a glimpse of the reality and ultimately arrange his permanent merger in the ocean of immortal eternal peace, tranquility and bliss.

SANT MAT DARSHAN

Written by Param Sant Satguru Mahatma
Sri Ramchandraji of Fatehgarh
Translated into English by
Dr. H. N. Saksena

What is Misery and how can it be avoided? What is Pleasure and how can it be obtained IN THIS VERY LIFE.

You can read these books on line at:
http://www.harnarayan-saxena.com/books--video-and-audio.html